'0' 3

आदि शङ्कराचार्यकृत

पञ्चीकरणम्

(प्रणवार्थः)

एवं

यज्ञोपवीत-विज्ञान

श्री पाण्डेय पं० महादेव शास्त्री

अमौर : कानपुर

भूमिका

ॐ तत् सद् ब्रह्मणे नमः

वैदिक साहित्य के भीतर ओम् शब्द का बड़ा महत्व है यहाँ तक कि आदरार्थं जैसे माता-पिता आदि का नित्य नाम साधारणतः नहीं लिया जाता उसी भाँति इस (ओम्) का भी एक पर्याय (उपनाम) प्रणव रख लिया गया है (जैसे माता-पिता आदि को माँ, अम्मा, बप्पा आदि कहते हैं) वेद मन्त्र व उपनिषद् व दर्शन आदि सभी शास्त्रों में माहात्म्य, जप, विचार आदि रूप से इस (ओम्) का आधार लिया गया है तो शङ्का यह होती है कि यह केवल शब्द ही शब्द मात्र है कि और कुछ ? इसी शङ्का को लेकर कहीं-कहीं उपनिषदों में इसके अर्थं का भी विचार किया है, यहाँ तक कि मांडूक्योपनिषद् पूरा इसी का अर्थं ही है। और पातञ्जल दर्शन में ईश्वर का वाचक (नाम) कह कर इसका जप इसके अर्थं भावना को ही कहा है (तज्जपः तदर्थंभावनम्) अर्थात् अर्थं भावना करना ही इसका प्रधान जप है इसके विचार से समष्टि (पर्यंक्) व व्यष्टि (प्रत्यक्) चेतन (ईश्वर-जीवात्मा) दो रूप से जो कहा जाता है, उसकी एकता का ज्ञान हो जाता है (ततः प्रत्यक् चेतनाधिगमः० पन्तं०) इसलिए अद्वैत सिद्धान्तवादी श्रीमत्परम-हंस परिव्राजकाचार्य जगद्गुरु श्रीशङ्कराचार्य जी ने पञ्चीकरण-विचार नाम की इस पुस्तिका में परमहंसों की समाधि विधि के नाम से इसी ओम् का अर्थं बहुत अच्छे ढङ्ग से किया है। ओम् के प्रायः ॐ, ओम् यह दो रूप लिखने में आते हैं। अर्थं विचार में ओम् के मात्राक्षर पृथक् कर (अ उ म्) समझाया गया है इससे सगुण ब्रह्म व शब्द ब्रह्म का रूप इसे कहते हैं। और अर्थं समझ जाने पर इसका पूर्ण अनुभव करके जो इसका संस्कारात्मक बुद्धि का बन जाना व निर्गुण ब्रह्म व परब्रह्म

का रूप है उसे ॐ कहते हैं। इसी (ॐ) का रूपकालंकार से गणेश के रूप की व अपभ्रंशरूप से स्वस्तिक चिह्न की भी कवियों ने कल्पना की है। सो इस ओम् का संस्कृत भाषा में ही अर्थ था उसको सर्व साधारण जिज्ञासुओं के समझने के लिए इसकी हिन्दी कर दी गयी है।

पञ्चीकरण इसका इसलिए नाम रखा है कि यजुर्वेद में (पञ्चस्वन्त पुरुष आविवेश०) व अथर्व संहिता व चरक व तैत्तिरीय उपनिषद में आत्मा से ही पञ्च महाभूतों की उत्पत्ति कह कर उसी में आत्मा प्रवेश पूर्वक संसार का बनना कहा गया है। एक का ही पाँच होना और पाँचों का आपस में सम्मिश्रण हो न्यूनाधिकता से बीज अङ्कुर रूप हो जगत् बन जाना और सब का अन्त में एक ही हो जाना पञ्चीकरण विचार कहा गया है (वेदान्त सूत्रों व पञ्चदशी आदि में बड़े विशद रूप से इस विषय का वर्णन है)। सांख्यादि शास्त्रों में अव्यक्त महान अहंकार आदि अनुक्रम से जगत का बनना कहा गया है, यह केवल प्रक्रिया भेद है या शिष्यों के समझने के लिए श्रुति वाक्यों के आधार से पञ्चभूतों के समष्टि गुणोत्पन्न अन्तःकरण व प्राण को प्रथम कह कर पश्चात् पञ्चभूतों के पृथक्-पृथक् प्रत्येक के अंश से उत्पन्न पदार्थों का होना वर्णन किया है, जैसा कि परिशिष्ट में दिये हुए चित्रों के विचारने से निश्चय हो जायगा कि सब का कहना युक्तियुक्त व एक ही है। सब शास्त्रों व सन्तों का कहना यही है कि एकता करो, एक हो जाओ (फूट न करो फूटो मत) तभी सुख होगा। इसीलिए एक तत्त्वाभ्यास कहने में कहीं केवल प्रकृति से ही सब हुआ (व विकास-वादानुसार चैतन्य भी प्राकृतिक) कहा गया है। और कहीं चैतन्य के साथ उसकी शक्ति व महिमा व माया नाम से कह कर चैतन्य ही चैतन्य मात्र सब कहा गया है। किन्तु विचार व अनुभव, युक्ति, प्रमाण व वेद के बहुत वाक्यों से व सन्तों के उपदेश से एक चैतन्य मात्र सत्ता स्फूर्ति पदार्थ ही होना निश्चय होता है इसी को स्पष्ट समझाने के लिए अद्वैतवाद के समस्त ग्रन्थ हैं

यह बहुत ऊँचा सयुक्तिक प्रायः सर्वमान्य सिद्धान्त है इसी को बताने वाला ओम् इस शब्द का अर्थ है।

ओम् के अर्थ का विचार करने से पिण्ड (प्रत्यक् पदार्थ) ब्रह्माण्ड (पर्यंक पदार्थ) के पदार्थों को एकता समझ में आ जाती है जैसे केन्द्र परिधि व विन्दु गोले का सम्बन्ध विचार करने से दोनों की एकता समझ में आ जाती है। एक हो जाने पर सब प्रथम चैतन्य सत्ता स्फूर्ति मात्र पदार्थ रह जाता है। यह एकायक समझ में नहीं आ सकने के कारण से द्वैत, अद्वैतवाद चल पड़े हैं आरम्भवाद, सत्कार्यवाद, विवर्तवाद व कर्म, उपासना (भक्ति) ज्ञान आदि मार्ग व प्रक्रिया इसी के समझने समझाने के योग्य शास्त्रों में कही हुई हैं। स्थूल-स्थूल से एक-एक करने व उत्पन्न करने में प्रथम द्वैतवाद ही अच्छा है। स्थूल से सूक्ष्म तक जाने के लिए भी द्वैतवाद ही व आरम्भ सत्कार्यवाद अच्छा है। द्वैतवाद में कर्म उपासना है इसीलिए सुखकर साधन माने गये हैं। परन्तु सूक्ष्म से कारण में पहुँचने के लिए विचार करते ही भेद लय होने लगता है, यही ज्ञान व अद्वैतवाद का विवर्त है तो कारण से तुरीय समझने व अनुभव करने में द्वैत (भेद) का लेश कहाँ रह सकता है। यही ओम् का पूरा अर्थ ज्ञान व अनुभव है।

आरम्भवाद—स्थूल से स्थूल बनने व पैदा होने में लगता है, जैसे दूध से दही, बीज से अङ्कुर।

सत्कार्यवाद (परिणामवाद)—स्थूल से सूक्ष्म व सूक्ष्म से स्थूल होने में लगता है जैसे दूध के भीतर दही के परमाणु व बीज के भीतर अङ्कुर (शक्ति न हो तो कैसे दही व अङ्कुर बन सकते।

विवर्तवाद—कारण से कार्य व कार्य से कारण होने में लगता है जैसे साँप का रस्सी होना, दूध ही में दही देख पड़ना, बीज ही अपनी शक्ति द्वारा अङ्कुर होना (दूसरा बना सा देख पड़ना है)।

आरम्भवाद—दूसरे से दूसरा होना। सत्कार्यवाद—दूसरे से दूसरा निकल आना व परिणत होना। विवर्त दूसरे में दूसरा देख पड़ना।

कर्म—कहीं ईश्वर है तदर्थ (तदाज्ञानुसार) सब कर्म करना, संसार सुव्यवस्थित रहने के लिए (सत्)।

उपासना (भक्ति)—ईश्वर सामने है उसकी पूजा प्रार्थना आदि करना (अन्तःकरण शुद्धि के लिए) (चित्)।

ज्ञान—ईश्वर सर्वत्र सर्वज्ञ सर्व रूप है इसलिए हम भी ईश्वर हैं ऐसा निश्चय करना (एकता के लिए) (आनन्द)।

सबको इसी से इन तीन (सत्=है=सदा रहना १) (चित्= ज्ञान रूप समझ के साथ २) (आनन्द=सुखमय सुख सहित ३) बातों की लालसा रहती है क्योंकि ईश्वर इन तीन गुण युक्त है और उसी के हम अंश जीव हैं। सो यह तीनों बातें (सत्, चित् आनन्द) तभी प्राप्त होती हैं कि जब ॐ को अच्छी तरह अपनाया जाय।

॥ हरि ॐ तत्सद् ब्रह्मणे नमः ॥

भूमिका परिशिष्ट

जिनके मत से प्रथम चिन्मात्र एक तत्त्व था उनके मत से इस पञ्चीकरण के अनुसार जगत् का उद्भव लय चिन्तन करना चाहिए। (देखो पृ० परिशिष्ट चित्र विचार)।। जिनके मत से प्रथम एक तत्त्व अचिन्मात्र था उनके मत से निम्नलिखित चित्र विचारना चाहिए। अचित् (प्रकृति) के तीन गुण होते हैं। उनके त्रिवृत्करण से सब पदार्थ बनते रहते हैं।

गुण तीन—	सत्व	रजः	तमः
उनका लक्षण—	प्रकाश	प्रवृत्ति	मोह
उनके परिणाम—	ज्ञान	कर्म	द्रव्य

अच्छा लगना मात्र ही सत्त्व की सत्ता है। कुछ अच्छा कुछ बुरा लगना रजः की सत्ता है। बुरा लगना मात्र तमोगुण की सत्ता है। प्रत्येक व्यक्ति का प्रत्येक पदार्थ में भिन्न-भिन्न भाव होना प्रत्येक गुणों की सत्ता है। विकाशवाद के अनुसार गुणों के द्वारा अचित् से ही चित् की भी उत्पत्ति होती है।

	सत्त्व	रजः	तमः
सात्विक—	आत्मा १	ईश्वर २	जीव ३
राजस—	अन्तःकरण ४	प्राण ५	इन्द्रिय ६
तामस—	देह ७	महाभूत पाँच ८	काष्ठलोष्ठादि ९

इस प्रकार परस्पर सम्बन्ध से गुणों द्वारा ही अचित् से चित् (आत्मेश्वर जीव) माने गये हैं। आगे इन्हीं ९ पदार्थों से समस्त संसार बनता रहता है। परन्तु जिनको प्रथम चिन्मात्र मान्य है वह चित् (ब्रह्म) के साथ ही उसकी महिमा व शक्ति (व उसी के ही गुण भाव) त्रिगुणामाया (प्रकृति-स्वभाव जिसे अचित् कहते हैं) मान ली गयी है। वैदिक सिद्धान्त इसी प्रकार का है और यही विशेष सयुक्तिक और उत्तम है।

॥ ॐ ॥

—

॥ ॐ स्वस्ति श्रीगणेशाय नमः ॥

पञ्चीकरणम् (प्रणवार्थः)

अथातः परमहंसानां समाधिविधिं व्याख्यास्यामः। सच्छब्दवाच्यमविद्याशबलं ब्रह्म। ब्रह्मणोव्यक्तम्। अव्यक्तान्महत्। महतोहङ्कारः। अहंकारात्पंचतन्मात्राणि। पंचतन्मात्रेभ्यः पंचमहाभूतानि। पंचमहाभूतेभ्योखिलं जगत् ॥ १ ॥

पञ्चानांभूतानामेकैकं द्विधाविभज्य स्वार्धभागं विहायार्धभागं चतुर्धाविभज्येतरेषु योजिते पञ्चीकरणं मायारूपदर्शनमध्यारोपापवादाभ्यां निष्प्रपञ्चं प्रपञ्च्यते ॥ २ ॥

पञ्चीकृतपञ्चमहाभूतानि तत्कार्यं च सर्वं विराडित्युच्यते, एतत्स्थूलशरीरमात्मनः। इन्द्रियैरर्थोपलब्धिर्जागरितम्। एतदुभयाभिमान्यात्मा विश्व एतत्त्रयमकारः ॥ ३ ॥

अपञ्चीकृतपञ्चमहाभूतानि पञ्चतन्मात्राणि तत्कार्यं च पञ्चप्राणा दशेन्द्रियाणि मनोबुद्धिश्चेति सप्तदशकं लिंगंभौतिकं हिरण्यगर्भ इत्युच्यते एतत्सूक्ष्मशरीरमात्मनः। करणेषूपसंहृतेषु जागरितसंस्कारजः प्रत्ययः सविषयः स्वप्न इत्युच्यते। तदुभयाभिमान्यात्मा तैजस एतत्त्रयमुकारः ॥ ४ ॥

शरीरद्वयकारणमात्माज्ञानं साभासमव्याकृतमित्युच्यते। एतत् कारणशरीरमात्मनः। तच्च न सन् नासन् नापिसदसत्। न भिन्नं नाभिन्नं नापिभिन्नाभिन्नं कुतश्चित्। न निरवयवं न सावयवं नोभयम्। किन्तु केवल ब्रह्मात्मैकत्त्वज्ञानापनोद्यम्। सर्वप्रकारज्ञानोपसंहारे बुद्धेः कारणात्मनावस्थानं सुषुप्तिः। तदुभयाभिमान्यात्मा प्राज्ञ एतत्त्रयं मकारः ॥५॥

अकार उकारे। उकारो मकारे। मकार ओङ्कारे। ओङ्कारोहम्येव अहमेवात्मा साक्षीकेवलश्चिन्मात्रस्वरूपो नाज्ञानं नापि तत्कार्यम्। किन्तु नित्यशुद्धबुद्धमुक्तसत्यस्वभावं परमानन्दाद्वयं प्रत्यग्भूतचैतन्यं ब्रह्मैवाहमस्मीत्यभेदेनावस्थानं समाधिः ॥ ६ ॥

तत्त्वमसि। ब्रह्माहमस्मि। प्रज्ञानमानन्दं ब्रह्म। अयमात्मा ब्रह्म। इत्यादि। श्रुतिभ्यः इति पंचीकरणं भवति ॥ ७ ॥

॥ इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य श्रीमच्छंकराचार्यविरचितं पंचीकरणम् ॥

पञ्चीकरण का भाषानुवाद। (प्रणव का अर्थ)
प्रणव [ओम्]

अब यहाँ से परमहंसों की समाधि-विधि को अच्छी प्रकार कहेंगे। सत् (है) इस शब्द से कहने योग्य अविद्या चित्रित ब्रह्म (था)—

टिप्पणी—अविद्या चित्रित का अर्थ यह है कि उस ज्ञानस्वरूप ब्रह्म में अविद्या अर्थात् अज्ञान व अविद्यमान माया उपदेश के लिए मान ली गयी है क्योंकि ज्ञानी में प्रमत्तता उन्मत्तता जड़ता का भी ज्ञान होना सम्भव है परन्तु अज्ञानी में ज्ञान होना असम्भव है। जैसे बुद्धिमान पुरुष पागल का स्वांग भर सकता है किन्तु पागल कोई भी क्रमवद्ध कार्य नहीं कर सकता। इसलिए पहिले पहिल जो एक तत्त्व था वह अपनी समस्त शक्ति व महिमा जो प्राकटच में जगद्रूप दिखती है उससे युक्त था ऐसा मान कर ही आगे कहना वनता है पश्चात् अनुभव होने पर संशय नहीं रहता शक्ति महिमा जगद्रूपता हो अविद्यमान माया सूत में कपड़े की भाँति दिखती है।

(उस) ब्रह्म से अव्यक्त (अर्थात् सत्व रजः तमः की साम्यावस्था रूप माया प्रकृति प्रधान)। अव्यक्त से महत्। महत् से अहंकार। अहंकार से पाँच तन्मात्रायें (शब्दतन्मात्रा १ स्पर्शतन्मात्रा २ रूपतन्मात्रा ३ रसतन्मात्रा ४ गन्धतन्मात्रा ५ अर्थात् सूक्ष्म पंचमहाभूत) तन्मात्राओं से पाँच महाभूत (आकाश १ वायु २ तेज ३ जल ४ पृथिवी ५)। महाभूतों से सब संसार (बना)॥ १॥

पाँचों भूतों में से प्रत्येक के दो-दो हिस्से करके अपने आधे-आधे भाग को छोड़ कर और आधे-आधे भाग के चार-चार टुकड़े करके दूसरों में से मिला देने पर पञ्चीकरण होता है (अर्थात् प्रत्येक भूतों में आधा अपना और आधे में चौथाई-चौथाई दूसरे भूत मिलना पञ्चीकरण कहाता है। राशि पूरी बनी रहते संमिश्रण हो जाना पञ्चीकरण है) यह पञ्चीकरण

माया रूप दृष्टिगोचर होता है। इस प्रकार अध्यारोप (संघात को दूसरा पदार्थ समझना) अपवाद (संघात को पृथक्-पृथक् करके मूल तत्त्व खोजना) से वही प्रपञ्च रहित (ब्रह्म) प्रपञ्चित होता है ॥ २ ॥

पञ्चीकरण किये हुए पाँचो महाभूत और इनका कार्य सब विराट कहा जाता है। यह विराट (संसार) और अपना शरीर स्थूल है। इन्द्रियों से विषयों का साक्षात्कार (शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध आदि का ज्ञान होना) जागरित (जाग्रदवस्था कहाती) है। इन दोनों (स्थूल जागरित) का अभिमानी आत्मा विश्व कहलाता है। यह तीनों अर्थात् स्थूल जागरित तथा विश्व (ओंकार का प्रथम अक्षर) अकार (अ कहे जाते हैं) ॥ ३ ॥

जिन पाँच भूतों का पञ्चीकरण नहीं हुआ व सूक्ष्मता हुआ है उनको पाँच तन्मात्रायें कहते हैं। यह पञ्चतन्मात्रा और उनका काय पाँचो प्राण दश इन्द्रियाँ मन तथा बुद्धि यह सत्रह तत्त्व लिंग (लक्षण मात्र) सूक्ष्म भूतों से बना हुआ (संसार के भीतर भरा हुआ) हिरण्यगर्भ कहलाता है (यह संसार के भीतर और) अपने शरीर के भीतर का शरीर सूक्ष्म है। इन्द्रियों के (बाहरी विषयों से) उपसंहार हो जाने पर जाग्रदवस्था के संस्कारों से होने वाला प्रपञ्च सब विषयों सहित (अर्थात् सोने समय का आन्तरिक प्रपञ्च) स्वप्न कहा जाता है। इन दोनों (सूक्ष्म स्वप्न) का अभिमानी आत्मा तैजस होता है। यह तीनों अर्थात् सूक्ष्म स्वप्न तथा तैजस (ओंकार का दूसरा अक्षर) उकार (उ कहे जाते हैं) ॥ ४ ॥

दोनों (स्थूल सूक्ष्म) शरीरों का कारण अपने आपका न जानना आभास के सहित अव्याकृत कहा जाता है (यह सब संसार का कारण) और अपने शरीर का कारण, कारण शरीर है (यह) न सत् (है) न असत् (नहीं है) और न कि सदसत् (है नहीं है) कहा जा सकता है। न भिन्न (पृथक् २) न अभिन्न (अपृथक् २) न कि भिन्नाभिन्न (पृथक्

व मिला हुआ) ही कहा जा सकता है और यही कहाँ से कहा जा सकता है कि वह अवयवों (अङ्गों) वाला है व अङ्गों वाला नहीं है व अङ्ग-सांगता वाला हो है। किन्तु वह केवल ब्रह्म आत्मा के एकत्व ज्ञान से अपनोद्य अर्थात् एक हो जाना परन्तु जानना नहीं कि एक हो गया। सब प्रकार के ज्ञान के समाप्त होने पर बुद्धि का कारण भाव से ठहर जाना सुषुप्ति है इन दोनों (कारण सुषुप्ति) का अभिमानी आत्मा प्राज्ञ कहाता है यह तीनों अर्थात् कारण सुषुप्ति तथा प्राज्ञ (ओंकार का तीसरा अक्षर) मकार (म् कहे जाते हैं) ॥ ५ ॥

अ (स्थूल) उ में (सूक्ष्म में) और उ (सूक्ष्म) म (कारण) में लय हो जाता है तथा म (कारण) ओम् (ब्रह्म) में लय पाता है। ओम् (सगुण ब्रह्म) अहमि (आत्म स्वरूप में) ब्रह्मात्मैकत्व ज्ञान साधन में लय हो जाता है। मैं ही आत्मा (आप ही आप) द्रष्टृमात्र (देखने वाला ही) केवल चिन्मात्र (ज्ञान स्वरूप) हूँ। न अज्ञान हूँ न अज्ञान का कार्य हूँ। किन्तु सदा रहने वाला निर्मल ज्ञानवान् स्वतन्त्र सत्य स्वभाव श्रेष्ठ सुखस्वरूप हूँ। प्रत्येक प्राणियों का चेतन रूप ब्रह्म ही मैं हूँ। इस अभेद से ठहर जाना ज्ञान-समाधि कही जाती है ॥ ६ ॥

क्योंकि उपनिषद्-वाक्यों के यह प्रमाण हैं = तत्त्वमसि = वह तू है ! ब्रह्माहमस्मि = ब्रह्म मैं हूँ। प्रज्ञानमानन्दं ब्रह्म = जिससे जाना जाता है व सुखस्वरूप मैं हूँ। अयमात्मा ब्रह्म = यह आत्मा (अपना वास्तविक स्वरूप) ब्रह्म है। इत्यादि श्रुतियों से जाना गया है। यह पञ्चीकरण नाम का विचार होता है ॥ ७ ॥

॥ इति पञ्चीकरण अर्थात् ओम् का अर्थ ॥

पञ्चीकरण का पदच्छेद पूर्वक अर्थ

शब्द	अर्थ
अथ	अब (अथवा मङ्गल व अधिकार व अनन्तर अर्थ का बताने वाला शब्द है) अर्थात् स्थूल, सूक्ष्म, कारण पदार्थका जिसको बोध हो उसीका अधिकार है व बोध के पश्चात् इसे समझे)
अतः	यहाँ से
परमहंसानाम्	परमहंसों की (परमश्रेष्ठ, हंस, साधक विवेकी पुरुषों की)
समाधिविधिम्	समाधि (चित्तस्थिर) विधि (प्रकार) को
व्याख्यास्यामः	विशेषता से कहेंगे
सत्+शब्द वाच्यम्	सत् (है, इस) शब्द से कहने योग्य
अविद्याशबलम्	अविद्या से चित्रित (अविद्या अर्थात् अज्ञान रूप व वस्तुतः जो न हो यानी माया व अपनी अव्यक्त शक्ति इच्छा महिमा ऐश्वर्य जो संसार का मूल प्रधान प्रकृति कहाती है उससे सुशोभित सत्ता मात्र)
ब्रह्म	सबसे बड़ा सर्व शक्तिमान् सर्वज्ञ (ज्ञान, अज्ञान, उन्माद, प्रमोद, सभी भावों का भण्डाररूप सगुण सर्वस्वरूप कूटस्थ एक पदार्थ) था
ब्रह्मणः	(उस) ब्रह्म से (सर्वसत्ता मात्र से)
अव्यक्तम्	अप्रकटरूप (अर्थात् सत्त्व रजः तमः यह तीनों गुण साम्यावस्था में हों पृथक्-पृथक् प्रकट रूप में न दिखते हों) प्रधान प्रकृति माया शक्ति (हुई)
अव्यक्तात्	(उस) अव्यक्त प्रधान प्रकृति से
महत्	महत् तत्त्व (बड़प्पन का गुण) अर्थात् बुद्धि, शक्ति व इच्छा कामना व सर्वदेशिविशेष गुण मात्र (हुआ)
महतः	(उस) महत् से (सर्वदेश व्याप्त महत्त्व गुणयुक्त समष्टिबुद्धीच्छा शक्ति से)
अहंकारः	अहंकार तत्त्व (परमाणुसत्ता मात्र एकदेशित्वगुणविशेष पार्थक्य बोधक व्यष्टिबुद्धीच्छाशक्ति मूल) हुआ
अहंकारात्	असंतत्व से (पार्थक्य गुण विशेष से)
पञ्च तन्मात्राणि	पाँच तन्मात्रायें

शब्द अर्थ

अर्थात् सूक्ष्म महाभूत—केवल वही वही भूतमात्र—शब्द तन्मात्र १ स्पर्श तन्मात्र २ रूपतन्मात्र ३ रस तन्मात्र ४ गन्ध तन्मात्र ५ हुए

पञ्चतन्मात्रेभ्यः = (उन) पाँच तन्मात्राओं से

पञ्च महाभूतानि = पाँच महाभूत अर्थात् आकाश, वायु, तेज, जल, पृथिवी यह प्रकट हुए

पञ्च महाभूतेभ्यः = इन पाँच महाभूतों से

अखिलम् = सब

जगत् = संसार (परिवर्तन शील, अस्थिर प्रवाहात्मक) बना

पञ्चानाम्, भूतानाम् = पाँचों भूतों का

एकैकम् = (पृथक् २) एक-एक को

द्विधा = दो-दो (२-२)

विभज्य = विभाग करके

स्वार्धभागम् = अपना-अपना आधा-आधा

विहाय = छोड़कर

अर्धभागम् = आधे-आधे भाग को

चतुर्धा = चार-चार (४-४)

विभज्य = विभाग करके

इतरेषु = औरों-औरों में

योजिते = मिलाने पर.

शब्द अर्थ

पञ्चीकरणम् = पञ्चीकरण (होता है) अर्थात् प्रत्येक भूतों में आधा-आधा अपना और आधे का चौथाई-चौथाई चारों भूतों में मिलाना तो एक-एक भूत की राशि उतनी ही रही परन्तु सम्मिश्रण हो गया यानी आधा अपना और आधे में चारो और

मायारूपदर्शनम् = (वही पञ्चीकरण) माया रूप (जादू का सा खेल) दृष्टिगोचर होने लगता है।

अध्यारोप + अपवादाभ्याम् = अध्यारोप और अपवाद से। एक-एक अवयव का मिल कर एक विशेष पदार्थ कल्पित होना अध्यारोप कहाता है अर्थात् क्रम संघात को दूसरा पदार्थ समझना। और एक एक अवयव की भिन्नता से वर्तमान पदार्थ असिद्ध कर मूल तत्व का देखना अपवाद कहाता है।

निष्प्रपञ्चम् = प्रपञ्च रहित

प्रपञ्च्यते = प्रपञ्चित होता है। (पाँचों भूतों से बने को या दिखावटी विस्तार को प्रपञ्च कहते हैं)

शब्द	अर्थ

पञ्चीकृत पञ्च महाभूतानि = पञ्चीकरण किये हुए पाँचों महाभूत
च = और
तत्कार्यम् = उनका कार्य
सर्वम् = सब
विराट् इति = विराट् ऐसा
उच्यते = कहा जाता है
एतत् = यह (विराट्)
स्थूल शरीरम् = स्थूल शरीर है
आत्मनः = अपना (शरीर) अर्थात् बाहर का जगद्रूप—समष्टि और अपना-अपना पृथग्रूप—व्यष्टि यानी पिण्ड व ब्रह्माण्ड का स्थूल शरीर कहाता है। स्थूल शरीर मोटा-मोटा खोखला रूप ऊपरी घेरा (कवर Cover)
इन्द्रियैः = इन्द्रियों से (कान, खाल, आँख, जीभ, नाक यह ५ ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। मुँह, हाथ, पाँव, लिंग, गुदा यह पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं। इन्द्रिय इन अङ्गों की विषय ग्रणह शक्ति को कहते हैं।
अर्थोपलब्धि-अर्थ = विषयों (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध ५ वाणी, ग्रहण, गति, क्षण, त्याग ५) की उपलब्धि—प्राप्ति (साक्षात्कार)

शब्द	अर्थ

जागरितम् = जाग्रदवस्था है
एतद्-उभय-अभिमानी = इन दोनों (स्थूल और जाग्रत्) का अभिमान करने वाला।
आत्मा = आप
विश्वः = विश्व (कहाता है)
एतत्त्रयम् = यह तीनों (स्थूल, जागरित, विश्व का तिक्का)
अकारः = अ (अर्थात् ओम् का प्रथम अक्षर है (अ-आदि-पहले समझ में आने वाला। अ-आप्ति-प्रत्यक्ष मिलने वाला)
अपंचीकृत पंच महाभूतानि = नहीं (या कि अल्पमात्र) हुआ है पञ्चीकरण जिनका ऐसे पाँच महाभूत (पञ्चतत्व)
पञ्चतन्मात्राणि = पाँच तन्मात्रा कहे जाते हैं (अर्थात् सूक्ष्म, महाभूत शब्दादि)
च = (वह सूक्ष्म पञ्च तत्त्व) और
तत्कार्यम् = उनका कार्य
पञ्च प्राणा = पाँच प्राण (१ प्राण-हृदय से मुख तक। २ अपान-नाभि से गुदा तक। ३ समान-नाभि हृदय के बीच में।

शब्द अर्थ

४ उदान-कण्ठ से सिर तक।
५. व्यान-सब देह के भीतर)

दश-इन्द्रियाणि = दशो इन्द्रियाँ (इन्द्रिय स्थान की सूक्ष्म विषय ग्राहक शक्ति)

मनः = संकल्प विकल्पात्मक अन्तः-करण वृत्ति (चित्त सहित मन)

च = और

बुद्धिः = निश्चयात्मक अन्तःकरण की वृत्ति (अहंकार सहित बुद्धि) अन्तःकरण—भीतरी इन्द्रिय जिसकी चार वृत्तियाँ (मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार) कही जाती हैं। बुद्धि—अपने स्थान में रह कर निश्चय करने वाली वृत्ति जिसका भेद ही मूल अहंकार है। मन-किरण रूप संचारी इन्द्रियों में जाकर संकल्प विकल्प पूर्वक विषय ग्रहण वृत्ति जिसका भेद चित्त है।

इति = इस प्रकार

सप्तदशकम् = सत्रह तत्त्व वाला (१० इन्द्रिय ५ प्राण १ मन १ बुद्धि)

लिङ्गम् = लिंग (लक्षण) वाला।

भौतिकम् = (सूक्ष्म) भूतों से बना हुआ

शब्द अर्थ

हिरण्यगर्भः = (हिरण्य अर्थात् तैजस पदार्थ हैं गर्भ में जिसके वह ब्रह्माण्ड व्यापी) हिरण्यगर्भ (सूक्ष्मसमष्टि शरीर)

इति = ऐसा

उच्यते = कहा जाता है

एतत् = यह (हिरण्यगर्भ)

सूक्ष्म शरीरम् = सूक्ष्म शरीर है

आत्मनः = अपना (अपने शरीर में भी भरा हुआ १७ तत्त्वों का सूक्ष्म शरीर कहाता है अर्थात् ब्रह्माण्ड व पिण्ड के भीतर सत्रह प्रकार की जो शक्ति भरी हुई है वही सूक्ष्म शरीर कही जाती है। स्थूल व्याप्त कार्य कारक विशेष शक्ति)

करणेषु + उपसंहृतेषु = इन्द्रियों के उपसंहार होनेपर अर्थात् बाहरी काम छूट जाने पर।

जागरित संस्कारजः = जाग्रत अव-स्थाके संस्कारों से होने वाला।

प्रत्ययः = आन्तरिक वासनामात्र भोग का प्रत्यक्षाभास।

सविषयः = सब विषयों सहित। (सोने समय का भीतरी दिखावा)

स्वप्नः = सपना (ख्वाब)

शब्द अर्थ

इति = ऐसा

उच्यते = कहा जाता है

तद् + उभय × अभिमानी = उन दोनों (सूक्ष्म, स्वप्न) का अभिमानी अर्थात् मैं व मेरा मानने वाला

आत्मा = आप

तैजस = तैजस (कहाता है)

एतत् = यह

त्रयम् = तिक्का (तीनों मिलकर) (सूक्ष्म १ स्वप्न २ तैजस ३ का बोध कराने वाला)

उकार = उ अर्थात् ओम् का दूसरा अक्षर है (उ-उभय-दूसरा—पहले अ से ऊँची कक्षा का पदार्थ उ-उत्कर्ष—ऊँची समझ का पदार्थ ऊपर व ऊंचा होने से उ कहाता है

शरीरद्वयकारणम् = दोनों (स्थूल सूक्ष्म, शरीरों (देहों) का कारण

आत्म + अज्ञानम् = अपने आपको भी न जानना (न जानने की भांति)

साभासम् = आभास के साथ (आभास दीप्ति, प्रतीति, प्रतिबिम्ब, तेज छाया, समानता सादृश्य आदि की भाँति)

शब्द अर्थ

अव्याकृतम् = अव्याकृत (व्याकृत अर्थात् व्याकरण, विस्तार नानात्व रहित) है। अनेकता से रहित एकीभूत सब एक ही हुआ, सम-भाव चैतन्य का घनीभूत ईश्वर

इति = ऐसा

उच्यते = कहा जाता है

एतत् = यह (अव्याकृत)

कारणशरीरम् = कारण शरीर है

आत्मनः = अपना (अपने दोनों स्थूल सूक्ष्म शरीरों का कारण मूल प्रकृति है) अर्थात् पिण्ड ब्रह्माण्ड का कारणमात्र।

तत् + च = सो वह (कारण रूप)

न = न

सत् = सत्तमात्र (है, ऐसा) व स्थूल

न = न

असत् = अभाव मात्र (नहीं है, ऐसा) व सूक्ष्म

न + अपि = और न

सत् + असत् = है व नहीं है या कि स्थूल, सूक्ष्म रूप है ऐसा ही कहा जा सकता है

न = (और) न (वह)

भिन्नम् = पृथक व फटा हुआ

न + अभिन्न = न अपृथक व जुड़ा हुआ

शब्द	अर्थ

न+अपि=और न

भिन्नाभिन्नम्+कुतः+चित्=पृथक अपृथक फटा जुड़ा ही कहीं से (कहा जा सकता है)

न निरवयम्=न बिना अङ्गों वाला

न सावयम्=न अङ्गों के सहित

न उभयम्=(और) न निरङ्ग व सांग ही कहा जा सकता है ।

किन्तु=बल्कि

केवल=खाली (सिर्फ)

ब्रह्मात्मैकत्वज्ञानापनोद्यम् = ब्रह्म (ईश्वर) आत्मा (आप-जीव) के एकत्व ज्ञान से अपनोद्य (अर्थात् ब्रह्म आत्मा का एक हो जाना परन्तु जानना नहीं कि एक हो गया । इस प्रकार का (अनिर्वचनीय) कारण शरीर होता है ।

सब प्रकार ज्ञान+उपसंहारे=सब प्रकारके ज्ञानके नाश हो जानेपर

बुद्धेः=बुद्धिका

कारणात्मना = कारण आत्मा से अर्थात् बुद्धिका अपने कारण भाव में ।

अवस्थानम्=ठहर जाना

सुषुप्तिः=सुषुप्ति (अवस्था कही जाती है) घन नींद, जब स्वप्न न देखता हो) उसे सुषुप्ति कहते हैं

तद् + उभय + अभिमानी + आत्मा=उन दोनों (कारण और सुषुप्ति का अभिमान करने वाला आप

प्राज्ञः=प्राज्ञ (सब कुछ एक साथ जानने वाला कहाता है)

एतत्=यह

त्रयम्=तिक्का (तीनों कारण १ सुषुप्ति २ और प्राज्ञ ३)

मकारः=म अर्थात् ओम् का तीसरा अक्षर है । (म-मापने वाला व फेंकने वाला अर्थात् म कारण को कहते हैं कारण में ही सब लय होता और उसी से पुनः निकलता है)

अकारः=अ अर्थात् स्थूल

उकारे=उ अर्थात् सूक्ष्म में (लय होता है)

उकारः=(और) उ अर्थात् सूक्ष्म

मकारे=म अर्थात् कारण में (लय पाता है)

मकारः=म अर्थात् कारण

शब्द	अर्थ

ओंकारे = ओम् अर्थात् सगुण ब्रह्म में (लय हो जाता है)

ओंकारः = (वह) ओम् (सगुण ब्रह्म)

अहमि = अहंभाव में (मैं हूँ इस सत्ता मात्र में)

एव = ही (ठहर जाना चाहिए)

अहम् = मैं (आत्म स्वरूप निर्गुण)

एव = ही

आत्मा = आप

साक्षी = देखने वाला (द्रष्टा मात्र)

केवल = खाली (प्योर Pure)

चित् + मात्रस्वरूपः = ज्ञानरूप (हूँ)

न + अज्ञानम् = न अज्ञान हूँ

न + अपि = और न

तत् + कार्यम् = उस (अज्ञान) का कार्य हूँ (संसार रूप हूँ)

किन्तु = बल्कि

नित्य = सदा रहने वाला

शुद्ध = निर्मल (पाप रहित)

बुद्ध = ज्ञानवान् (समझदार)

मुक्त = छुटा हुआ, अबद्ध

सत्यस्वभावम् = सत्य (यथार्थ) स्वभाव (अपनी सत्ता) वाला

परम + आनन्द + अद्वयम् = श्रेष्ठसुख स्वरूप द्विभाँति रहित

शब्द	अर्थ

प्रत्यक् + भूत चैतन्यम् = प्रत्येक प्राणियों का चेतनरूप (आपा)

ब्रह्म = ब्रह्म (मूलतत्त्व = असलियत)

एव = ही

अहम् = मैं

अस्मि = हूँ

इति = इस प्रकार

अभेदेन = अभेद से

अवस्थानम् = ठहरना

समाधिः = (ज्ञान) समाधि (कही जाती है) अर्थात् यही निर्विकल्प समाधि है। (क्योंकि उपनिषद् वाक्योंके यह प्रमाण हैं—
१. तत्त्वमसि छान्दो० २. ब्रह्माहमस्मि बृह० ३. प्रज्ञानमानन्दं ब्रह्म एतरेय० ४. अयमात्मा ब्रह्म माण्डू०

तत् = वह (आत्मा)

त्वम् = तू

असि = है

ब्रह्म = परं तत्त्व (आत्मा)

अहम् = मैं

अस्मि = हूँ

प्रज्ञानम् = ज्ञानस्वरूप व ज्ञानाधार व ज्ञप्तिमात्र (आत्मा)

शब्द	अर्थ
आनन्दम्	सुखस्वरूप, सुखमात्र
ब्रह्म	परं तत्त्व मैं हूँ)
अयम्	यह (व्यष्टि, पिण्ड व्याप्त)
आत्मा	आपा रूप (मैं मात्र)
ब्रह्म	परं तत्त्व (हूँ)
इत्यादि	इस प्रकार और भी
श्रुतिभ्य:	श्रुतियों (वेदों व उपनिषद् वाक्यों) से निश्चय करना चाहिए
इति पञ्चीकरण भवति	ऐसा पञ्चीकरण विचार होता है। एक ही पाँच प्रकार का होकर और पाँचो-पाँचो का सम्मिश्रण हो संसार रूप हुआ सा विचारने से सावधान होता है।

•

परिशिष्टम्

कारण

आत्मा = ॐ

ब्रह्म + माया = ओम्

ईश्वर + प्रकृति = शक्ति, प्रधान अव्यक्त (म्)

सूक्ष्म

(सत्त्वप्रधान) महान् = काम, इच्छा, समष्टिबुद्धि

(रज: प्रधान) अहंकार

(तम: प्रधान) पञ्चतन्मात्र (उ)

स्थूल

पञ्च महाभूत जगत् (अ)

यह चित्र इसी ग्रन्थ के उपक्रमानुसार है

अक्षर– अ उ म् ओम्

अवस्था–जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति तुरीय

समष्टि-विराट् हिरण्यगर्भ ईश्वर परमात्मा

व्यष्टि–विश्व तैजस प्राज्ञ आत्मा

पदार्थ–स्थूल सूक्ष्म कारण आत्मामात्र

जैसे एक गेंदकी भाँति कोई गोल (अण्डाकार) वस्तु लेना उसमें जहाँ चाहे वहीं केन्द्र मानकर परिधिपर्यन्त सम्बन्ध मान ले तो गोला सब केन्द्रों का आधार व सम्बन्धी होगा और केन्द्र भिन्न-भिन्न अपनी सत्ता रखते हुए गोले के आश्रयी सम्बन्धी होंगे। इसी प्रकार पिण्ड (केन्द्र) व ब्रह्माण्ड (परिधि

गोला) का सम्बन्ध है। पिण्ड (बिन्दु) की इन्द्रियाँ और ब्रह्माण्ड विराट की इन्द्रियाँ देवता ही कही जाती हैं दोनों परस्पर सम्बन्धी हैं।

अन्तःकरण

अधिभूत	अधिदैव	अध्यात्म
विषय	(देवता)	इन्द्रिय
संज्ञान	चैतन्य	स्फुरण
चिन्तन	वासुदेव	चित्त
अहंकरण	रुद्र	अहंकार
संकल्पविकल्प	चन्द्र	मनः
निश्चय	ब्रह्मा	बुद्धिः

ज्ञानेन्द्रिय

शब्द	दिशा	श्रोत्र
स्पर्श	वायु	त्वचा
रूप	सूर्य	नेत्र
रस	वरुण	रसना
गन्ध	अश्विनी	नासिका

कर्मेन्द्रिय

भाषण	अग्नि	वाक्
ग्रहण	इन्द्र	हस्त
गवन	विष्णु	पाद
क्षरण	प्रजापति	उपस्थ
त्याग	मृत्यु	गुदा
संयोग	समष्टि	व्यष्टि
कार्य	ब्रह्माण्ड	पिण्ड
छिद्र—अवकाश	विष्णु	आकाश
विक्षेप—गति	सूर्य	वायु
ताप—पाचन	शक्ति	तेज
शैत्य—क्लेदन	गणेश	जल
आधार—धारण	महेश	पृथिवी
उर्ध्वनयन—निर्माण	आकाश	उदान
पाचन—परिणमन	अग्नि	समान
प्राणन—आकर्षण	सूर्य	प्राण
सञ्चालन—रोचन	वायु	व्यान
अधोनपन-अपकर्षण	पृथिवी	अपान

पञ्च महाभूतों के सूक्ष्म व स्थूल रूप से सम्मिश्रण होकर जो पदार्थ बनते हैं उनका संक्षेप साधारण रूप से निम्नलिखित चित्र से बहुत कुछ समझना। विस्तार रूप से तो अनन्त आघात प्रत्याघात अंशांश संश्लेष विश्लेष अनेक प्रकार से समस्त संसार ही बन रहा है।

अपञ्चीकृत (सूक्ष्म पञ्चीकरण) किये सूक्ष्मभूत (तन्मात्र) कार्य

यह सूक्ष्म शक्तियाँ पिण्ड ब्रह्माण्ड में व्याप्त हैं—

	आकाश	वायु	तेज	जल	पृथ्वी = सूक्ष्मभूत
समष्टि, सत्वांश—आकाशीय—स्फुरण	चित्त	अहंकार	मन।	बुद्धि	= अन्तःकरण

समष्टि, रजोंश–वायवीय—उदान	प्राण	समान	व्यान	अपान	=प्राण
प्रत्येक, सत्वांश–तैजस —श्रोत्र	त्वचा	नेत्र	रसना	नासिका	=ज्ञानेन्द्रिय
प्रत्येक, रजोंश–आप्य—वाक्	हस्त	पाद	उपस्थ	गुदा	=कर्मेन्द्रिय
प्रत्येक, तमोंश–पार्थिव—शब्द	स्पर्श	रूप	रस	गन्ध	=तन्मात्र

पञ्चीकृत (स्थूल) भूत कार्य

(हर एक भूतों में हर एक के सम्मिश्रण से यह पदार्थ बनते हैं)

	आकाश	वायु	तेजः	जल	पृथिवी
आकाशीय	—शोक	काम	क्रोध	मोह	भय
वायवीय	—प्रसारण	धावन	वलन	चलन	आकुञ्चन
तैजस	—निद्रा	तन्द्रा (तृषा)	क्षुधा	कान्ति	आलस्य
जलीय	—लाला	स्वेद	मूत्र	शुक्र	रक्त
पार्थिव	—रोम	चर्म	नाड़ी	मांस	अस्थि

(यह सब व्यष्टि गत स्थूल शरीर में देख पड़ते हैं)

महाभूत विशेष कार्य

(इसी प्रकार प्रत्येक भूतों में कुछ-न-कुछ विशेषता से अनेकानेक पदार्थ बने)

	आकाश	वायु	तेज	जल	पृथिवी
लक्षण	—रिक्त	गति	उष्ण	शीत	जड़ता
गुण	—लघु	रूक्ष	तीक्ष्ण	स्निग्ध	गुरु
उपमा	—आत्मा	प्राण	अहंकार	मनः	देह
दिव्यता	—जीवन	स्पर्शन	वाक्	प्राण	मनः
विकार	—परिश्रम	श्वास	उष्णता	स्वेद	मल
कोश	—आनन्दमय	प्राणमय	विज्ञानमय	मनोमय	अन्नमय

आत्मा = एक पदार्थ की द्विधाशक्ति। चित् अचित् = (सापेक्ष्य से कल्पित)

चित्	परा	चैतन्य	क्षेत्रज्ञ	अक्षर	परस्तात्।
अचित्	अपरा	जड़	क्षेत्र	क्षर	अवस्तात्।

सत्व रजः तम = दो पदार्थों से त्रिधा—१. चित् से सत्व। २. अचित् से तम। ३. सम्मिश्रण से रजः।

आकाश वायु तेज जल पृथिवी = तीन पदार्थों से पञ्चधा–१. सत्वसे आकाश। २. सत्वरज से वायु। ३. रज से तेज। ४. रज तम से जल। ५. केवल तम से पृथिवी।

चित् = ईश्वर (समष्टि व्याप्त) जीव (व्यष्टि व्याप्त)

अचित् = सत्व, प्रकाश, ज्ञान, रजः प्रवृत्ति, कर्म, तप, मोह, द्रव्य।



॥ श्रीः ॥

यज्ञोपवीत विज्ञान

यज्ञोपवीत (जनेऊ) के सम्बन्ध में आज कल प्रायः बहुत विवाद देखा जा रहा है। किसी का कहना है कि यज्ञोपवीत आर्य सन्तान (हिन्दूमात्र) एवं मनुष्यमात्र को धारण करना चाहिए, क्योंकि प्रजापति यज्ञोपवीत धारण किये हुए प्रकट हुए थे। प्रजापति की सृष्टि में प्रजापति का अनुकृत (तदनुरूप) ही मनुष्य है। मनुष्य ही के संस्कार विशेष रूप से होते हैं और मनुष्य ही विचार करते-करते अपने आत्म तत्व की ओर झुक कर अन्त में प्रजापति में मिल जाता है। किसी का कहना है कि आर्यों में जो द्विजाति (ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य) हैं, उन्हीं को यज्ञोपवीत धारण करना चाहिए, क्योंकि उन्हीं के विशेष संस्कार होते हैं, वे ही यज्ञोपवीत के अधिकारी हैं, इत्यादि। किन्तु तब भी कितने ही द्विजाति यज्ञोपवीत की सर्वथा उपेक्षा करते हैं और सस्कारहीन रह कर अपने को द्विजाति कहते हुए भी यज्ञोपवीत से बहुधा वंचित हैं। परन्तु यज्ञोपवीत वस्तुतः क्या है? क्यों धारण करना चाहिए? कैसे धारण करना चाहिए? यह तो साधारण सी बातें हैं, यज्ञोपवीत बनाया कैसे जाय या ऐसा, वैसा या कैसा ही क्यों बनाया जाय, इस निर्माण-परम्परा का विचार प्रायः रुका हुआ-सा या साधारण-सा हो गया है। निर्माण-पद्धति के विचार करने से सम्भवतः बहुत कुछ विवाद शान्त हो सकता है, अतः यहाँ उसी पर विचार किया जा रहा है। विचार आरम्भ करने के पूर्व प्रार्थना यह है कि यदि कोई किसी कारण से निर्माण न कर सके, तो सहसा धारण करना न छोड़ दें या न धारण करने वाले सहसा धारण ही न करने लग जायँ, क्योंकि धार्मिक विषय, उसमें भी याज्ञिक (संस्कार

विशेष) विषय पारलौकिक, परोक्ष, अदृश्य, मरण के पश्चात् सुख-दुःखात्मक फलदातृकर्मसत्तावादात्मक ईश्वरीय आज्ञा मात्र है, इसलिए परम्परागत विषय का, जो यम-नियम के विशेष विरुद्ध न हो, सहसा त्याग न करना चाहिए किन्तु श्रद्धा से करते रहना और विचार करते रहना चाहिए। जब कोई स्पष्ट, सोपपत्तिक, संयुक्तिक वैदिक प्रमाण मिल जाय, तब भले ही परम्परागत आचार का त्याग किया जा सकता है।

यज्ञोपवीत-निर्माण के विषय नें प्रायः दो प्रकार के प्रमाण पाये जाते हैं। एक साधारण, जैसा कि 'आह्निक-सूत्रावलि' के परिशिष्ट और 'पारस्कर गृह्यसूत्र' के भाष्यों में लिखा है। वह केवल ९६ चौका को पूर कर (मिली हुई अँगुलियों के मूल से) बनाना लिखा है। वहाँ ब्राह्मणादि वर्ण भेद से निर्माण में कोई प्रकार भेद नहीं है। मूल अर्थात् अँगुलियों की जड़ से ९६ बार पूरने पर केवल कटिपर्यन्त हो, यह भी सामञ्जस्य वहाँ नहीं है। इसी से कहीं 'संहतांगुलिमूलके" इसके स्थान में 'संहतांगुलि-शीर्षके' ऐसा पाठ देखा गया है, जिससे 'अँगुलियों की जड़ की अपेक्षा अँगुलियों के शिर अर्थात् अग्रभाग से पूरना' यह अर्थ हो जाता है। यह पाठ ठीक भी समझ पड़ता है।

दूसरी विशेष निर्माण-विधि शिष्ट-परम्परा से प्राप्त है, जिसमें ब्राह्मणादि वर्ण भेद से चौकों के पोरों में और संख्या में स्पष्ट प्रमाण मिलता है और कटिपर्यन्त सबका हो जाय, यह भी सामञ्जस्य लग जाता है और आह्निक आदि के वेदमन्त्र संख्यक विषय से समन्वय भी हो जाता है, अतः यही निर्माण-विधि विशेष सयुक्तिक ज्ञात होती है। साधारण निर्माण-प्रकार में चौकों की जो ९६ संख्या दी गयी है, उसका हेतु यह है कि—'चतुर्वेदेषु (च) गायत्री चतुर्विंशतिकाक्षरी। तस्माच्चतुर्गुणं कृत्वा ब्रह्मतन्तुमुदीरयेत्॥' और 'तिथिवाराश्च नक्षत्रं तत्ववेदगुणत्रयम्। कालत्रयं च मासांश्च ब्रह्मसूत्रं तु षाण्णवम्॥' अथवा महाभूत ५, तन्मात्र ५, इन्द्रिय १०, अन्तःकरण ४, प्राण ५, अवस्था ४,

देह ३, भाव-विकार ६, ऊर्मि ६, कोश ६, अरिषड्वर्ग ६, विषय ९, (इन्द्रिय और अन्तःकरण के विषय १४ होते हैं। उनमें पञ्च तन्मात्र ही ज्ञानेन्द्रियोंके विषय हैं, इससे ९ विषय गणना में रहे, ५ तन्मात्र पहले गिन लिये गये हैं) देवता १४, व्यवहार ४, काल ३, गुण ३, कर्म ३ ऐसे ९६ पदार्थ माने गये हैं। इनका ज्ञान यज्ञोपवीत होने पर होना चाहिए, इसलिए ९६ चौंका पूरना चाहिए। किन्तु यहाँ पर प्रवर-ग्रन्थि आदि विषय फिर भी परम्परागत हो माने गये हैं, पर इनका कोई रहस्य नहीं बतलाया गया है। इससे सब विषय विशेष स्पष्ट नहीं होते, इसलिए यह साधारण निर्माण-प्रकार कहा गया है।

विशेष निर्माण-प्रकार में चौकों को संख्या ब्राह्मणादि वर्णभेद से इस प्रकार है 'षोडशाशीति विप्राणं द्वादशाशीति भूभुजाम्। चतुरशीति वैश्यानां कुर्यात्सूत्रस्य वेष्टनम् (अशीति शूद्र उच्यते)' 'अंगुल्यग्रे तु विप्राणं क्षत्रियो मध्यपर्वतः। अंगुलिमूले तु वैश्यनां कुर्यात्सूत्रस्य वेष्टनम् ॥' अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य के लिए क्रमशः ९६, ९२ और ८४ चौका सूत्र लेना चाहिए। यह चौका ब्राह्मण के लिए अंगुलियों के अग्र से, क्षत्रियों के लिए मध्य से और वैश्यों के लिए मूल से नापना चाहिए। इस प्रमाण में यह भी विशेषता है कि पाठान्तर में शूद्र का भी ग्रहण मिलता है। मालूम पड़ता है कि इसी से माला के सदृश गण्डा आदि के पहनने की रीति आर्यशूद्रों में पायी जाती है (मनुष्य-कार्य में माला की तरह जनेऊ का पहनना प्रमाणयुक्त हो है)। प्रवर-ग्रन्थि आदि विषय परम्परागत सदाचार, कुलाचार एवं देशाचार के अनुसार देखने में आते हैं। इन बातों का विवरण सत्सङ्ग प्राप्त, सयुक्तिक, सोपपत्तिक, वैदिक प्रमाणों से आगे किया जायगा।

टि०—यज्ञोपवीत के विषय में 'ओरायन='वेदकाल-निर्णय' नामक ग्रन्थ में लोकमान्य श्री बालगङ्गाधर तिलक ने लिखा है कि प्रजापति सृष्टि के कर्ता का विराट शरीर है। उसका उच्च भाग खगोल है। उस

खगोल में आकाशगङ्गा (शिशुमारचक्र, जिसे लोक में 'हाथी की राह' कहा करते हैं) यज्ञोपवीत की भाँति है। इसी खगोल-ज्ञान के साथ वेद-काल में आर्यों ने यज्ञोपवीत-धारण की रीति चलाई, जो किसी न किसी रूप से सभी प्राचीन आर्य-शाखाओं में अब भी प्रचलित है, किन्तु अन्तर यह हो गया है कि कोई कांधे में, कोई पेट में एवं कोई कटि में धारण किया करते हैं। अयनांश-प्रकरण के सम्बन्ध में ९६ अंश की कोई खगोल सम्बन्धी संख्या सम्भवतः उस प्रचीन काल में रही होगी। लोकमान्य जी का मत संक्षेप में यही है, विशेष जानने के लिए उन्हीं का ग्रन्थ देखना चाहिए।

यज्ञोपवीत के विषय में कुछ लिखने के पहले उसके नाम की व्याख्या आवश्यक है, क्योंकि प्रत्येक पदार्थ का परिचय पहले उसके नाम से ही होता है। फिर उसका लक्षण, स्वरूप आदि जानना चाहिए। 'यज्ञोपवीत' शब्द में साधारण तीन शब्द हैं–'यज्ञ', 'उप' और 'वीत'। यज्ञ शब्द संस्कृत में 'यजु' धातु से जिसका अर्थ देवपूजा, सङ्गतिकरण और दान है, 'नड' (कृत्) प्रत्यय होने पर बनता है, जिसका अर्थ है जो यजन किया जाय। वही कर्म अर्थ में विष्णु ईश्वर भगवान् है अथवा जिससे यजन किया जाय, वह यज्ञ है अर्थात् कर्म करने की वह विधि एवं प्रकार है, जिससे किया हुआ कर्म बन्धन न करे, दुखदायी न हो। चाहे वह कर्म देवपूजन हो, सङ्गति हो (मेल करना हो) करण अर्थात् किसी कार्य का रूप हो या सङ्गतिकरण अर्थात् सत्संग करना हो अथवा दान अर्थात् त्यागरूप कर्म हो। बन्धन न कर सके या दुःख न दे सके, इस प्रकार से कर्म करना 'यज्ञ' कहलाता है। यह यज्ञ शब्द का अर्थ हुआ। इसके आगे 'उप' यह संस्कृत में उपसर्ग नामक एक अव्यय है, जो धातु से प्रायः प्रथम जोड़ा जाता है। इसका अर्थ प्रायः समीपार्थक होता है। तीसरा शब्द 'वीत' है। संस्कृत में 'वी' धातु अथवा 'वि' उपसर्ग सहित 'इण' धातु से 'क्त' प्रत्यय होने पर 'वीत' शब्द बनता है, जिसके अर्थ गया, पहुँचा, पाया;

घुसा, जाना, हुआ, पैदा हुआ, झलक पड़ा, फेंका गया, खाया गया या जाना, पहुँचना, पाना, मिलना, घुसना, जानना, जनना, झलकना, फेंकना, खाना आदि होते हैं। यह तीनों (यज्ञ, उप और वीत) शब्द मिलकर यह अर्थ होता है "यज्ञेन, यज्ञस्य, यज्ञाय, यज्ञाद् वा उपवीतं यज्ञोपवीतं ॥ आर्यज्ञान प्रतिज्ञासूत्रम् । सूचनाद्, वेष्टनाद् वा सूत्रं ॥ वैदिकधर्मीय वेष्टितं वा तदर्थचिह्नम्" अर्थात् यज्ञ से यज्ञ के जो मिला हो वा यज्ञ के पास जिससे जा सके, पहुँच सके ऐसा चिह्न अथवा यज्ञ से पैदा होना, दूसरा जन्म, स्थूल देह नहीं किन्तु कर्म ज्ञानात्मक सूक्ष्म देह एवं उससे भी परे होना अर्थात् यज्ञ से दुबारा उत्पन्न होता है, इस बात को बतलानेवाला चिह्न और विद्या (वेद, ज्ञान) एवं तत्त्वों का बतलानेवाला अर्थात् इतनी विद्या या इतने पदार्थों का ज्ञान आर्यों को होना चाहिए या होता है इसका सूचक यह सूत्र है अथवा उन विद्या और तत्त्वों को लपेट कर धारण किया गया यह सूत्र है। विद्या तथा तत्त्वों के स्मरण से लपेटा हुआ यह आर्यों का ज्ञानसूचक चिह्न है, जो शरीर में फेंका (डाला गया) झलकनेवाला-वैदिक धर्म सेवन से अदृश्य गुणों को भुगाने वाला यह सूत्ररूप चिह्न (आर्यों की चपरास) है। इस तरह 'यज्ञोपवीत' शब्द का अर्थ हुआ।

अब यहाँ विचार यह होता है कि यज्ञ (वैदिक धर्म) उप (समीपार्थ) वीत् (प्राप्त) आदि अर्थवाला चिह्न जो यज्ञोपवीत है, यह निर्माण करने की विधि से कैसे ज्ञात होता है ? विद्या (वेदज्ञान) और विद्या से जाना हुआ तत्त्व, वस्तुतः एक ही है। जिस पिण्ड और ब्रह्माण्ड की एकता का पूर्ण अनुभव के साथ ज्ञान हो, यही वेदविद्या से जिस तत्त्व का ज्ञान होता है, वह एक ही वस्तु है, उसी में ही सब ओत-प्रोत है। "येन भूतान्यशेषेण द्रक्ष्यस्यात्मन्यथो मयि" अर्थात् जिस ज्ञान से सब भूतों को अपने तथा मेरे में देखेगा, वही ज्ञान सबसे पवित्र उत्तम श्रेष्ठ है। "तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः" । जहाँ सर्वभूत आत्मा हो गये, यहाँ एकता देखने

वाले को क्या मोह और क्या शोक ? "स ओतः प्रोतश्च विभूः प्रजासु" वही एक विभु प्रजाओं में ओत-प्रोत है। "सूत्रे मणिगणा इव" जैसे सूत्र में सूत्र की ही मणियाँ गूँथ कर बना ली जायँ। इस प्रकार तत्त्व ज्ञान एक ही है, जो कि वेदों से निष्पन्न होता है। वह वेद चार प्रकार के हैं या वे वेद चार प्रकार की वाणी से कहे गये हैं—ऋक् (पद्यात्मक) ज्ञान-प्रधान और यजुः (गद्यात्मक) कर्म-प्रधान, साम (गीतात्मक) उपासना-प्रधान और अथर्व (गद्यपद्यगीतसंमिश्रित) अथर्ववेद व्यवहारप्रधान। तथाच आयुर्वेद, गान्धर्ववेद, धनुर्वेद और स्थापत्यवेद ये भी केवल लौकिक विषय वाले चार उपवेद, जो वेदों (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद) के पीछे लगे रहते हैं तथा पूर्वोक्त चारो वेद, इनकी मन्त्र-ब्राह्मण, विभाग से एक लाख संख्या है—'लक्षं तु वेदाश्चत्वारः।' उसमें ८० सहस्र (हजार) कर्मकाण्ड (साधारण व्यवहार, आधिभौतिक-सम्बन्धी), १६ सहस्र उपासना काण्ड (विशेष व्यवहार, आधिदैवत सम्बन्धी), ४ सहस्र ज्ञानकाण्ड (त्याग व्यवहार, आध्यात्मिक सम्बन्धी) है, इसलिए 'वेदाः पर्वसु तिष्ठन्ति वेदः पर्वसु गीयते' इस स्वरादिबोधक शिक्षाग्रन्थानुसार वेद चार अंगुलियों के अगले भाग व उपवेद पिछले भाग से लपेटने में सूचित हैं। ८० सहस्र व्यवहार-काण्ड (पौरुषेय) होने से केवल ब्राह्मण भाग में सब ही का अधिकार है। इससे वैकल्पिक विधि से आर्य शूद्रों का भी यज्ञोपवीत हो जाता है तथा ४ सहस्र वैश्यकर्म-विशेषबोधक अपौरुषेय मन्त्र हैं, अतः वैश्य के लिए सूत्र ८४ चौका अंगुलियों के मूल पोरों से लपेटना चाहिए। ८ सहस्र क्षत्रियकर्मविशेष (प्रजारक्षण, युद्धकलादिसहित) बोधक अपौरुषेय वेद हैं, इसलिए क्षत्रिय के लिए सूत्र ९२ चौका अंगुलियों के मध्यम पोरों से लपेटना चाहिए। ४ सहस्र ब्राह्मण कर्मविशेष (अध्यापन, याजन, प्रतिग्रह) बोधक अपौरुषेय मन्त्र भाग वेद है, अतः ब्राह्मण के लिए ९६ चौका अंगुलियों के अगले पोरों से लपेटना चाहिए। अपने-अपने कर्म सविधि करना ही ईश्वर-पूजन (उपासना) है—'स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति

मानवः' (गीता) 'आज्ञाचरणमेवाहुर्मुख्यमाराधनं सताम्' एवं १६ सहस्र उपासनाकाण्ड की संख्या द्विजातियों की स्वकर्मविशेष बोधक है। पश्चात् ४ सहस्र ज्ञानकाण्ड है, जहाँ संन्यासी के लिए वाह्यसूत्र का त्याग कर आन्तरिक विचारसूत्र का धारण करना बतलाया गया है। इस प्रकार चार वेद के लक्ष संख्यानुसार चौकों का त्रिसूत्रात्मक (कर्म, उपासना, ज्ञानसंमिश्रणात्मक) विचार हुआ। चार वेद न पढ़ सकने पर भो गायत्री मन्त्र तो अवश्य ही द्विजातियों को जानना चाहिए, क्योंकि गायत्री चारों वेदों की माता तथा चारों वेदों में मिलने वाला विशेष मन्त्र है। वह चौबीस अक्षर का छन्द है, इसी से किन्हीं के मतनुसार साधारण निर्माण में २४-२४ अक्षर चारों वेदों के, इससे ९६ चौके का सबको धारण करना कहा गया है। आगे तत्वों के समन्वय से यज्ञोपवीत के निर्माण का विचार किया जायगा।

यज्ञोपवीत द्वारा तत्वों के ज्ञान का विषय इस प्रकार है कि एक ही अव्यक्त सूत्रात्मक तत्व सर्वत्र भरा हुआ अनेक रूपों में दिखलाई पड़ता है, जैसे वही सूत कपड़ा, जाली, रस्सा, पाश आदि रूप में दिखलाई पड़ता है। एक अद्वैत, अव्यक्त, अक्षर सच्चिदानन्द में या उसकी ऐश्वर्य महिमा शक्ति प्रकृति में सापेक्ष भाव से जो आरोपण किये जाते हैं, वे सत्व, रज और तम अर्थात् ज्ञान, कर्म, द्रव्य अथवा प्रकाश, क्रिया स्थितिरूप कहे जाते हैं। इनमें भी प्रत्येक में प्रत्येक का अन्तर्भाव करके (३×३ होकर ९ गुण अर्थात् सूत्र होकर) ९ पदार्थ होते हैं, जो कि यज्ञोपवीत द्वारा दिखाये, बतलाये या समझाये गये हैं। उनका प्रमाण वेदमन्त्रों में बड़ी ही सरस भाषा में इस प्रकार मिलता है—'स ओतः प्रोतश्च विभूः प्रजासु' (यजु०)। 'तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषाम्' (ऋक् और यजुः)। 'नव प्राणान्नवभिः संमिमीते दीर्घायुत्वाय शत-शारदाय। हरिते त्रीणि रजते त्रीणि अयसि त्रीणि तपसा विष्ठितानि ॥ अग्निः सूर्यश्चन्द्रमा भूमिरापो द्यौरन्तरिक्ष प्रदिशो दिशश्च ॥ आर्तवा

ऋतुभिः सविदाना अनेन मा त्रिवृता परयन्तु ॥' (अथर्वसंहिता ५.६ २८.१) अर्थात् यज्ञोपवीत नौ सूत्रों से नव प्राणों को सौ वर्षों के लिए दीर्घायु निर्माण करता, बनाता और बतलाता है। तप (विचार) से हरित (चित्-चैतन्य प्रकाशरूप सत्व) में, रजत (रागात्मक-क्रियात्मक रज) में, अयस् (लोहा अर्थात् अचिद्स्थिति, द्रव्य, जड़ात्मक तम) में तीन (तत्व) स्थापित करता है अर्थात् नौ धागों से नौ तत्वों को (तीनों सत्व, रज, तम में उन्हीं तीनों के मिलने से अर्थात् त्रिवृत्करण से) बतलाता है अर्थात् सत्व में सत्व (चित्+चित्) आत्मा, सत्व (चित्) में रज-ईश्वर (कर्ता, धर्ता, हर्ता), सत्व में तम चित्+अचित्) जीव, रज में सत्व–अन्तःकरण, रज में रज-प्राण, रज में तम इन्द्रियाँ, तम (अचित्) में सत्वप्राणिदेह, तम में रज महाभूत और तम में तम–काष्ठलोष्ठादि, इस प्रकार ज्ञान, कर्म और द्रव्य (चित्, चिदचित्, अचित्) में परस्पर संमिश्रण से एक-एक के तीन-तीन होकर प्रत्येक में अपनी प्रधानता से जो तत्व बने वे नौ ही पदार्थ बने, न कि न्यून, न अधिक। जनेऊ अपने धागों से यही सूचित करता है।

दूसरे मन्त्र में बताया गया है कि अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी, अप् (जल), द्यौ, अन्तरिक्ष, दिशा और प्रदिशा इन पदार्थों के आधार पर ही सब जगत् ठहरा है, यही नौ देवता हैं, जो पर्याय से भिन्न नाम से अन्यत्र भी कहे गये हैं। जैसे ओङ्कार, अग्नि, तक्षक, सोम, पितर, प्रजापति, वायु या यम, सूर्य और विश्वदेवा। इन सबको लक्ष्य करके ही त्रिवृत् (३×३) किये हुए नौ तन्तुओं से (एक ही सूत्र में) यज्ञोपवीत बनता है। फिर उसमें ग्रन्थि लगती है। ग्रन्थि में पहले ब्रह्मपाश-माया का दिग्दर्शन होता है। जैसे त्रिगुण का होना मायामात्र ही है, वैसे ही तीनों धागे परस्पर एक में दूसरा फँसकर तीन लोक, तीन अवस्था तथा प्रणव की तीन मात्रा का ज्ञान कराते हैं—'तिस्रो मात्रा मृत्युमत्यः प्रयुक्ता अन्योन्यसक्ता अनविप्रयुक्ता' (प्रश्नोपनिषद्) तीनों लड़ें एक में फँसी

हुईं, परन्तु पृथक्-पृथक् रहती हैं। उसमें प्रवरों के अनुसार ग्रन्थि लगायी जाती है। प्रवरों में दो भेद हैं—तीन और पाँच। तीन प्रवरों के पक्ष में अपने गोत्र में प्रधान तीन पुरुष तथा समष्टिश्रेष्ठ उत्पत्ति-स्थिति-लय-कारक ब्रह्मा, विष्णु और महेश। अथवा पञ्च प्रवर पक्ष में गोत्र के श्रेष्ठ पाँच पुरुष एवं पञ्च महाभूतों के पाँच देवता—गणेश, देवी, ब्रह्म, (सूर्य), विष्णु और महेश होते हैं। शेष दो सूत्र में प्रवर-ग्रन्थि के बाद (नीचे) भूमि एवं (ऊपर) आकाश की कल्पना कर तीन (विराटसमष्टि ब्रह्माण्ड के) नेत्र—ऊपर सूर्य तथा चन्द्र और नीचे अग्नि ये ग्रन्थिरूप (घनीरूप पिण्ड) से कल्पित हैं। इनके ऊपर एक ग्रन्थि साधारण होती है, जिससे ब्रह्माण्डगोल छिद्ररूप शून्य दिखलाया गया है। यही शिवनेत्र कहे जाते हैं, वृहदारण्यकोपनिषद् में इनका वर्णन मिलता है। शेष जो दोनों सूत्र बटे जाते हैं, वे चित्-अचित्, पुरुष-प्रकृति, अक्षर-क्षर, क्षेत्रज्ञ-क्षेत्र का सम्मेलन बतलाते हैं। उनमें ऊपर ग्रन्थि—चिदचित्संमिश्रणरूप ग्रन्थि (जड़-चेतन-ग्रन्थि)—दिखलाकर ऊपर अवशिष्ट अशेष सूत्र से अव्यक्त परम ज्ञान सूचित है।

इस प्रकार परम्परागत यज्ञोपवीत निर्माण के सम्वन्ध में जान लेने से यह निश्चिय होता है कि यह द्विजाति आर्यों का विद्या तत्त्वसूचक सूत्ररूप चिह्न है। इतना विषय ब्रह्मचर्यावस्था में रहकर सीखना चाहिए। फिर गृहस्थ, वनस्थ आश्रम को पालन कर मुमुक्ष होकर त्यागरूप संन्यास ग्रहणकर इन तत्त्वों एव विद्याओं से परे अपने वास्तविकरूप का अनुभव करना चाहिए, जिसे कि सच्चिदानन्द केवल आत्मा कहते हैं। जो कि सर्वजगद्रूप, तत्त्वज्ञानरूप है, वह सूत्र से प्रथम अव्यक्त परमाक्षर तूल (रुई) तथा तूल से भी परे पदार्थ है। वह सर्वरूप (वस्त्र, यज्ञोपवीत आदि) होता हुआ भी सबसे पृथक् स्वसत्तामात्र है। सूत्र ही वस्त्ररूप में बना दिखलायी पड़ता है, परन्तु वस्त्र को कोई भी सूत्र नहीं कहता, अतः सूत्रज्ञान वस्त्रज्ञान से भिन्न होता है, वैसे ही वह मूल आत्मतत्त्व सर्वरूप सबसे भिन्न होकर ही पहचाना जाता है। इस प्रकार

यज्ञोपवीत-निर्माण में यह तत्त्वविद्या का विचार यथाश्रुत लिखा गया है।

इसलिए उपनयन संस्कार में एक यज्ञोपवीत पहिनाया जाता है कि इतनी तत्त्वविद्या जानना समस्त आर्य बालकों को उचित है। और समावर्तन संस्कार में दूसरा यज्ञोपवीत पहिनाया जाता है कि इतनी तत्त्वों व वेदविद्या इसने जान लिया। इसी से ब्रह्मचारी को एक और स्नातक को दो यज्ञोपवीत पहिनाये जाते हैं। प्राचीन में बिना स्नातक हुए विवाह ही न होता था, इससे आजकल भी विवाह के पूर्व दूसरा जनेऊ पहिनना प्रचलित है और भी जनेऊ सम्बन्ध में बहुत सी अप्रमाणिक रीतियाँ यत्र-तत्र प्रचलित हैं उनका वर्णन यहाँ विषयान्तर समझकर नहीं लिखा गया—इसके आगे यज्ञोपवीत के निर्माण व धारण करने की प्रमाण व विधि लिखी जाती है।

यज्ञोपवीत निर्माण धारण प्रमाण

छान्दोग्यपरिशिष्टे—सह वै देवानाँचासुराणां यज्ञो पततावास्तां वयँ सर्वंलोकमेष्यामोवयमेष्याम इति तेसुरा संनह्य सहसैवाचरन् ब्रह्मचर्येण तपसैव देवास्तेसुरा अमुह्यंस्ते न प्रजानंस्ते पराभवंस्तेन स्वर्गं लोकमायन्। प्रसृतेन वै यज्ञेन देवाः स्वर्गं लोकमायन्नप्रसृतेनासुरान् पराभावयन् इति। प्रसृतोह वै यज्ञोपवीतिनो यज्ञोप्रसृतोनु पवीतिनो यत्किंच ब्राह्मणो यज्ञोपवीती अधीते यजते एव तत् इति। तस्माद्यज्ञोपवीतीत्येवाधीयीतयाजयेद्यजेत वा यज्ञस्यप्रसृत्यै इत्यजिनं वासो वा दक्षिणत उपवीय इति।

कार्पास क्षौम गोवालशणवल्कतृणादिकम्। सदासम्भवतोधार्यमुपवीतं द्विजातिभिः॥ इति॥ तै. आ. २ प्र २।२=दक्षिणवाहुमुद्धरतेवधत्ते सव्यमितियज्ञोपवीतमेतदेव विपरीतं प्राचीन वीतँ संवीतं मानुषम् इति॥ उपवीतं ब्रह्मसूत्रं प्रोद्धृते दाक्षिणे करे। प्राचीनवीतमन्यस्मिन्निवीत कण्ठलम्बितम् (इत्यमरे) दक्षिणवाहुमुधृत्य वामस्कन्धे निवेशितम्।

यज्ञोपवीतमित्युक्तं देवकार्येषु शस्यते ।। इति हेमाद्रौ संक्षेपार्थं = देव (आर्य) असुर (अनार्य) दोनों के (मनुष्य मात्र के) पास यज्ञ आगिरे (कि यज्ञ द्वारा ही स्वर्ग लोक अर्थात् मरण पश्चात का सुख मिलता है) तो देव और असुर दोनों ने विचारा कि हम स्वर्ग लोक जायँगे, हम स्वर्ग लोक जायँगे इतने में असुरों ने अकस्मात् तैयार हो यज्ञ किया और देवताओं ने (आचार्य के पास जाकर) ब्रह्मचर्य तप से ही यज्ञ किया। तब तो वह असुर मोहित हुए न जान सके, घबड़ा-से गये, स्वर्ग न जा सके। देवता प्रसृत यज्ञ से स्वर्ग लोक चले गये, अप्रसृत से असुरों को पराभव कर गये ।। प्रसृत (फैले हुए) यज्ञ यज्ञोपवीत वालों ही के होते हैं और अप्रसृत यज्ञ बिना जनेऊ वालों के होते हैं ।। जो कुछ ब्राह्मण यज्ञोपवीत धारी पढ़ता है, यजन करता है वही मानो पढ़ना व यज्ञ करना है। इसीलिए यज्ञोपवीतधारी ही होकर पढ़े यज्ञ करे करावे यज्ञ के प्रसृति (फैलाव) के लिए मृगचर्म व वस्त्र दक्षिण (हाथ) ऊपर खुला रखे धारण करे ।। कपास, रेशम, ऊन, सन, तृणघास इत्यादि से यथासम्भव बना हुआ उपवीत द्विजातियों को धारण करना चाहिए ।। दहिना हाथ खुला रहे अर्थात् बायें कांध में पड़ा हो ऐसा होना सव्य, उपवीत यज्ञोपवीत कहा जाता है। बायाँ हाथ खुला दाहिने काँध में पड़ा अपसव्य प्राचीनबीत कहा है तथा माला सा जनेऊ रहना, संवीत व निवीत कहा जाता है। सदा अथवा देवकार्य में सव्य। पितृकार्य में अपसव्य और मनुष्यकार्य में माला सा जनेऊ रखना चाहिए ।। इसका प्रयोजन यह है कि देवयान उत्तरायणमार्ग है इससे यज्ञोपवीत देवकार्य में उत्तर अर्थात् वामस्कन्ध में रखना और पितृयाण दक्षिणायन मार्ग है, इससे पितृ-कार्य में दक्षिण ओर अर्थात दक्षिणस्कन्ध में रखना (किन्तु नान्दी-श्राद्ध में सब्य रखना क्योंकि प्रजोत्पति व प्रजासंस्कार के पश्चात् देवयानार्थं विद्या तप आदि करना चाहिए यह सूचना होती है) मनुष्यकार्य में माला सा रखना व हमेशा देवता बनाने की स्मृति के साथ सव्य रखना शास्त्राज्ञा है ।। शौचादि के समय कान में रखने का कारण यह है कि—

आदित्या वसवो रुद्रा वायुरग्निश्च धर्मराट् ।
विप्रस्य दक्षिणे कर्णे नित्यं तिष्ठन्ति देवताः ॥१॥
अग्निरापश्च वेदाश्च सोमः सूर्योनिलस्तथा ।
सर्वे देवास्तु विप्रस्य कर्णे तिष्ठन्ति दक्षिणे ॥२॥
प्रभासादीनि तीर्थानि गंगाद्याः सरितस्तथा ।
विप्रस्य दक्षिणे कर्णे बसन्ति मुनिरब्रवीत ॥३॥
गंगा च दक्षिणे श्रोत्रे नासिकायां हुताशनः ।
उभयोः स्पर्शनेनैव तत्क्षणादेव शुद्धयति ॥४॥
कुर्यादाचमनं स्पर्शं गोपृष्ठस्यार्कदर्शनम् ।
कुर्वीतालंभनं चापि दक्षिणश्रवणस्य च ॥५॥

इत्यादि शास्त्रवाक्यों से बताया गया है कि 'ब्राह्मण के दाहिने कान में ही सब देवता व तीर्थं रहते हैं', इसलिए 'अपवित्रता के समय दाहिना कान छूना चाहिए तथा च दाहिने कान में गङ्गा, नाक में अग्नि रहती हैं', इससे किसी कारण से कोई 'अपवित्रता हो जाय' तो आचमन करे ।१। या गोपृष्ठका स्पर्श करे ।२। व सूर्य का दर्शन करे ।३। अथवा दाहिना कान छूले ।४। ये चारों बराबर हैं ॥ इसका वास्तविक विचार यह है कि देवता व विद्या व तत्वों का ज्ञान उपदेश से ही होना है । वह उपदेश का सुनना बिना कान के कैसे होगा ? उपदेशाधार कर्णेन्द्रिय ही है । इसलिए अपवित्र समय में विद्यातत्वाधार ब्रह्मसूत्र दाहिने कान में रखना स्मरण कराता है कि पवित्रता व मेध्यता जो ईश्वर प्राप्ति मोक्ष के प्रधान साधन हैं, वह कान द्वारा उपदेश श्रवण से ही प्राप्त होते हैं ॥ नाक में अग्नि रहती है इससे यह समझना कि प्राणायाम की गर्मी से मलपाप, मन का चांचल्य वहुत शीघ्र दूर हो जाते हैं ॥ गौ की पीठ का स्पर्श (यों तो गोरज ही मल शोधक है) बताता है कि प्रधान यज्ञहवि घी का यही उत्पत्ति पिण्ड है ॥ सूर्य ही प्रधान ईश्वर की विभूति है । इस ब्रह्माण्ड (सौरजगत) संचालक व देवयान का द्वार व संसार का प्राण है । इसकी सदैव उपासना करना ही स्वस्वरूप को प्राप्त कराने वाली है ॥ (अपने,

नित्य-शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, आनन्दरूप से गिरना पातक, पाप व मल है) और उपदेश सुनकर, मननकर, धारणकर, अपने आप ठहरना (स्वस्वरूप प्राप्ति) ही प्रधान धर्म, पुण्य, शुद्धि है ।। दहिना पुरुष व बायाँ स्त्री-अंग कहा गया है क्योंकि बिना पुरुष, स्त्री (बिना प्रकृति पुरुष) के कोई भी पदार्थ नहीं है । इससे दाहिना कान प्रधान कहा गया है ।। किन्तु उपदेश में दोनों कान काम आते हैं इसीसे कहीं कहीं शास्त्र में कभी कभी बायें कान में जनेऊ रखना कहा है परन्तु प्रधान दाहिना ही अधिक सम्मत है (मूत्रे तु दक्षिणे कर्णे पुरीषे वामकर्णके) मूतने में दाहिने कान में और मलोत्सर्ग में बायें कान में (व दोनों कान में) जनेऊ रखना चाहिए ।। इस प्रकार जनेऊ के रखने का प्रमाण व विज्ञान विचार प्रयोजन संक्षेप से लिखा गया ।।

टिप्पणी =आयुर्वेद विज्ञान से यह बात ज्ञात होती है कि शरीर का वाम भाग कफ प्रधान है । शीत का प्रभाव विशेष रूप से बायीं ओर अपना बल दिखाता है और शरीर का दक्षिण भाग पित्त प्रधान है । दक्षिण भाग में वायुवेग शीघ्र प्रभाव नहीं डालता इसीलिए सदैव जनेऊ बाम भाग में रक्खे तथा दुपट्टा, चद्दर आदि बाम कँधे पर धारण करना सीधा समझा जाता है । प्राचीन अंगरखा, अचकन, कुरता, बगलबन्दी आदि, इसी भाँति (हिन्दुओं) के बनते थे कि बायाँ परदा अन्तर्भागाश्रित मुँदा हुआ और दायाँ परदा वहिर्भागाश्रित खुला हुआ होता था ।।

कार्पास क्षौम गोवाल शणवल्कतृणादिकम् ।
सदा संभवतो धार्यमुपवीतं द्विजातिभिः ।।

शुचौ देशे शुचिसूत्रै संहताङ्गुलिशीर्षके ।
आवेष्ट्यषण्णवत्यातत् त्रिगुणीकृत्ययत्नतः ।।

शुचौ देशे शुचिः सूत्रं संहताङ्गुलिमूलके ।
आवेष्ट्यषण्णवत्यातत् त्रिगुणीकृत्ययत्नतः ।।

अंगुल्यग्रे तु विप्राणां क्षत्रियो मध्यपर्वतः ।
अंगुलिमूले तु विशां कुर्यात्सूत्रस्य वेष्टनम् ॥
अंगुल्यग्रे द्विजाग्राणां मध्यदेशे च भूभुजाम् ।
मूलदेशे तु वैश्यानां कुर्यात्सूत्रस्य वेष्टनम् ॥
षोडशाशीति विप्राणां द्वादशाशीति भूभुजाम् ।
चतुरशीति वैश्यानामशीतिः शूद्र उच्यते ॥
अब्लिङ्गकैस्त्रिभिः सम्यक् प्रक्षाल्योर्ध्ववृतं च तत् ।
अप्रदक्षिणमावृत्त सावित्र्या त्रिगुणीकृतम् ॥
अधः प्रदक्षिणावृत्तं समं स्यान्नवसूत्रकम् ।
त्रिरावेष्टच दृढ़ं वध्वा हरिब्रह्मेश्वरान्नमन् ॥
त्रिवृदूर्ध्वं वृत्तं कार्यं तन्तुत्रयमधोवृतम् ।
त्रिवृतं चोपवीतं स्यात्तस्येको ग्रन्थिरिष्यते ॥
वामावर्त्तं त्रिगुणं कृत्वा प्रदक्षिणावर्त्तं नवगुणं विधाय ।
तदेवं त्रिसरं कृत्वा ग्रन्थिमेकं विदध्यात् ॥
पृष्ठवंशे च नाभ्यां च वृतं तद्विन्दते कटिम् ।
तद्धार्यमुपवीतं स्यान्नातिलंबं न चोच्छ्रितम् ॥
वामस्कन्धे कृतं नाभिहृत्पृष्ठबंशयोर्धृतम् ।
कटिपर्यन्तमाप्नोति तावत्परिमाणकं भवेत् ॥
सूत्रं सलोमकं चेत्स्यात्ततः कृत्वाविलोमकम् ।
सावित्र्या दशकृत्वाद्भिः मंत्रिताभिस्तदुक्षयेत् ॥
विच्छिन्नं वाप्यधोयातं भुक्त्वा निर्मितमुत्सृजेत् ।
स्तनादूर्ध्वमधोनाभेर्नधार्यं तत्कथंचन ॥
ब्रह्मचारिण एकं स्यात्स्नातस्य द्वे वहूनि वा ।
तृतीयमुत्तरीयं वा वस्त्राभावे तदिष्यते ॥
द्वे एव च सदाधार्ये एकं नैव च धारयेत् ।
तृतीयं चोत्तरीयं स्याद वस्त्राभावे बिधीयते ॥

यज्ञोपवीते द्वे धार्ये श्रौते स्मार्त्ते च कर्मणि।
तृतीयमुत्तरीयाभावे वस्त्राभावे चतुर्थकम् ॥
उपाकर्मणि चोत्सर्गे गते मासचतुष्टये।
नव यज्ञोपवीतानि धृत्वा पूर्वाणि संत्यजेत् ॥
जीर्णयज्ञोपबीतानि शिरोमार्गेण संत्यजेत्।
कण्ठादुत्तीर्यं सूत्रं तु पुनः संस्कारमर्हति ॥
सूतके मृतके चैव गते मासचतुष्टये।
नवयज्ञोपबीतानि धृत्वा जीर्णानि संत्यजेत् ॥
विना यज्ञोपवीतेन तोयं यः पिवते द्विजः।
उपवासेन चेकेन पंचगव्येन शुद्धयति ॥
बिना यज्ञोपवीतेन विण्मूत्रोत्सर्गकृद्यदि।
उपवासद्वयं कृत्वा दानैर्होमैस्तु शुद्धयति ॥
मलमूत्रं त्यजेद् विप्रो विस्मृत्यैवोपवीतधृक्।
उपवीतं तदुत्सृज्य धार्यमन्यन्नवं तदा ॥
सदोपवीतिनाभाव्यं सदा बद्धशिखेन च।
विशिखो व्युपवीतश्च यत्करोति न तत्कृतम् ॥
ब्रह्मणोत्पादितं सूत्रं विष्णुना त्रिगुणीकृतम्।
रुद्रेण दत्तो ग्रन्थिर्वं सावित्र्या चाभिमंत्रितम् ॥

इन श्लोकों का भाव यह है कि—कपास, रेशम, गोवाल (ऊन) सन, तिन, (मूँज) आदि पवित्रता के साथ लाकर पवित्र स्थान में ही तकली आदि से दक्षिणावर्ती सूत कातकर अंगुलियों के चौवों में ९६ बार ब्राह्मण अगले पोर से, क्षत्रिय मध्य पोर से ९२, वैश्य अंगुलियों के मूल पोर से ८४। मतान्तर से आर्यशूद्र मूल से ८०। संख्यात लपेट कर तिगुना करे (बनाने में यथावसर यथासंभव गायत्री जपता रहे) फिर जल से भिगोकर काते तथा तिगुने को तिगुना कर काते (कातने में प्रथम तिगुना वामावर्त्त, दुबारा तिगुना दक्षिणावर्त्त काते, ऐसा स्मरण रहे)

फिर ब्रह्मपाशपूर्वक त्रिसर (तिहरा) कर प्रवर नेत्रादि पूर्वक यथोपदिष्ट ग्रन्थि लगावे। अपना बनाया नाभि पृष्ठवंश से रखा कंध से कटि तक होता ही है। यदि दूसरे का बनाया हो तो कटि से अधिक लम्बा व स्तन कुक्षि से चढ़ा हुआ छोटा न होना चाहिए। टूटा, गिरा खाकर बनाया हुआ भी न होना चाहिए।

ब्रह्मचारी को एक। स्नातक=गृहस्थ व वनस्थ को दो जनेऊ धारण करना चाहिए—तीसरा जनेऊ उत्तरीय (दुपट्टा अँगौछा) के न होने पर तथा वस्त्र न होने पर (केवल कौपीन पहिने हो) चार जनेऊ पहनना उचित है। ब्रह्मचारी को छोड़कर कभी कोई एक न पहिने, बहुत चाहे पहिन ले। धारण समय जनेऊ का संस्कार कर ले। उपाकर्म-उत्सर्ग चार मास पश्चात्, सूतकमृतक के पश्चात् व दस्त-पेशाब में कान पर न होने में जनेऊ बदलना चाहिए। बिना जनेऊ पहिने द्विजाति को कोई भी श्रौत-स्मार्त्त कर्म व भोजन व दस्त-पेशाब न करना चाहिए। अपसव्य व माला सा जब समय हो तो करे वैसे सदा सव्य व शिखा बाँधे रहना चाहिए॥ परम्परानुसार श्रावण में बनाकर श्रावणी में संस्कार कर वर्ष भर के लिए रख छोड़े तो धारणावसर में सुविधा रहती है।

यथ अज्ञोपवीत धारण संस्कार विधिः

आचमन प्राणायाम करके संकल्प करे=ॐ तत्सद् अद्येहेत्यादि अमुकशर्माहं (वर्माहं वा गुप्तोहं) मम श्रौतस्मार्त कर्मानुष्ठानसिद्ध्यर्थं (अमुक निमित्तकं) नवयज्ञोपवीतधारणमहं करिष्ये॥ फिर शुद्ध यथोक्त-प्रकार बने हुए यज्ञोपवीत दोनों हाथ से ग्रहण कर गायत्री मन्त्र १.३.१० पढ़कर प्रक्षालन करे (अच्छे प्रकार धोकर वाम हाथ में रखकर दाहिने हाथ से कुश जल से छिड़के) मन्त्र=ॐ आपोहिष्ठा ० यथा च नः॥३॥ ॐ पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनसा धियः। पुनन्तु विश्वा भूतानि जातवेद पुनीहि माम्॥४॥ ॐ पवित्रेस्थो वैष्णव्यौ ००० तच्छकेयम्॥५॥ गायत्री

मन्त्र से भी ।। प्रक्षालन करके हस्तसम्पुट में रखकर दश-दश वार गायत्री पढ़कर अभिमन्त्रित करे ।। तत्पश्चात् अँगूठों से घुमाते हुए या वाम हाथ में या किसी शुद्ध पात्रादि में रखकर दाहिने हाथ से फूल अक्षत छोड़ते हुए देवतान्यासावाहन करे = नवतन्तुओं के नव-देवता होते हैं। उनके मन्त्र = (प्रणवस्य ब्रह्मा ऋषिः परमात्मदेवता गायत्रीछन्दः प्रथमतन्तौ ॐ कारावाहने न्यासे विनियोगः) ॐ कारं प्रथमे तन्तौ न्यसामि आवहयामि ॐ ।।१।। (अग्निदूतमित्ति मन्त्रस्य मेधातिथिर्ऋषिरग्निर्देवता गायत्रीछन्दो द्वितीयतन्तौ अग्न्यावाहने न्यासे विनियोगः) ॐअग्निं द्वितीये तन्तौ न्यसामि आवाहयामि = ॐ अग्निदूतं पुरोदधे हव्यवाहमुपब्रुवे देवा ँ२ आसादयादिह ।।२।। (अग्निर्मूधा दिवः ० मन्त्रं वा) (नमोस्तु सर्पेभ्य इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः सर्पोदेवताः अनुष्टुप्छन्दस्तृतीयतन्तौ सर्पावाहने न्यासे विनियोगः) ॐ नमोस्तु सर्पेभ्यो येके च पृथिवीमनु । ये अन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः । ॐ नागान्तृतीये तन्तौ न्यसामि आवाह ० ० ।।३।। ॐ सोमं चतुर्थे तन्तौ न्य ० आवा ० ४ (वयँ सोमेत्यस्य वन्धुर्ऋषिः सोमो देवता गायत्रीछन्दश्चतुर्थे तन्तौ सोमावाहने न्यासे विनियोगः) ॐ वयँ सोमव्रतेतबमनस्तनूषु विभ्रतः । प्रजावन्तः सचेमहि ।।४।। ॐ पितृन्पंचमे तन्तौ न्य ० आवा ० (उदीरतामित्यस्य शंख ऋषिः पितरो देवता त्रिष्टुप्छन्दः पञ्चमतन्तौ पित्रावाहने विनियोगः) ॐ उदीरतामवर उत्परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः । असुँय ईयुरबृका ऋतज्ञास्तेनोवन्तु पितरो हवेषु ।।५।। ॐ प्रजापतिषष्ठे तन्तौ न्य० आवा ।। (प्रजापतेरित्यस्य हिरण्यगर्भ ऋषिः प्रजापतिर्देवता त्रिष्टुप्छन्दः षष्ठतन्तौ प्रजापत्यावा ०) ॐ प्रजापतेन त्वदेवतान्यन्यो विश्वारूपाणि परिता वभूव । यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तुवयँ स्यामपतयोरयीणाम् ।।६।। ॐ वायुँसप्तमेतन्तौ न्य ० आवा ० (आनोनियुद्भिरित्यस्य वसिष्ठ ऋषिरनिलो देवता त्रिष्टुप्छन्दः सप्तमतन्तौ अनिलावाहने विनियोगः) ॐ आनोनियुद्भिः शतिनीभिरध्वरँ सहस्रिणीभिरुपयाहि यज्ञम् । वायो अस्मिन्सवने मादयस्व यूयं पातस्वस्तिभिः सदानः ।।७।। ॐ रविं (यमं वा) अष्टमेतन्तौ न्य०

आवा० । आकृष्णेनेत्यस्य मन्त्रस्य हिरण्यस्तूपाङ्गिरस ऋषिः सूर्यो देवता त्रिष्टुप्छन्दः अष्टमेतन्तौ सूर्यावाहने विनियोगः । ॐ आकृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च । हिरण्ययेन सविता रथेनादेवो याति भुवनानि पश्यन् ।। (सुगाव इत्यस्यात्रिर्ऋषिः गृहपतयो देवता आर्षीत्रिष्टुप्छन्दः अष्टमे तन्तौ यमा०) ॐ सुगावो देवाः सदना अकर्म या आजग्मेदं सवनं जुषाणाः । भरमाणा वहमाना हवींष्यस्मे धत्त वसवो वसूनि स्वाहा इति मतान्तरेण यमावाहनम् ।।८।। ॐ नवमेतन्तौ विश्वान्देवानावाहयामि न्यसामि । (विश्वेदेवा स आगतमित्यस्य मधुच्छन्द ऋषिः । विश्वेदेवा देवता त्रिष्टुप्छन्दो नवमतन्तौ विश्वेदेवा देवानामावाहने विनियोगः) ॐ विश्वेदेवा स आगत श्रृणुताम इमं हवम् । एदं वर्हिर्निषीदत ।।९।। विश्वेभ्योदेवेभ्यो नमः ।। (च पुनः) ॐ यजुर्वेदं प्रथमदोरके न्यसामि आवाहयामि ॐ इषेत्वोर्जेत्वा वायवस्थ देवो वः सविताप्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मण आप्यायध्वमघ्न्या इन्द्राय भाग प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्मा मावस्तेन ईशत माघशंसोध्रुवा अस्मिन्गोपतौ स्यात वह्वीर्यजमानस्य पशून्पाहि ।।१।। ।।१०।। ॐ ऋग्वेदं द्वितीयदोरके न्य० आवा० ॐ अग्निमीडे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् । होतारं रत्नधातमम् ।।२।। ।।११।। ॐ सामवेदं तृतीयदोरके न्य० आवा० ॐ अग्न आयाहि वीतये गृणानो हव्यदातये । निहोता सत्सिवर्हिषि ।।३।। ।।१२।। ॐ अथर्ववेदं ग्रन्थौ ब्रह्मपाशेन्य० आवा० ॐ शंनोदेवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये । शंयोरभिस्रवन्तु नः ।।४।।१३।। (वेदों में ऋग्वेद की प्रथम गणना है, परञ्च कर्मकाण्ड में यजुर्वेद की महत्ता है और उपासना (भक्ति) काण्ड में सामवेद की महत्ता है, व्यवहार शान्ति पुष्टि आदि विषयों में अथर्ववेद की । तथा सर्वत्र ज्ञानकाण्ड स्वस्तिपुण्याहवाचन आदि यज्ञारम्भ में ऋग्वेद ही प्रथम पढ़ना चाहिए । यहाँ पर भी ऋग्वेद का ग्रहण प्रथम डोरे में कर ले तो कोई क्षति नहीं है । संस्कार भास्कर आदि में प्रथम यजुर्वेद का ग्रहण है, इससे प्रथम लिखा गया है ।। पुनश्च (ब्रह्मयज्ञानमित्यस्य प्रजापतिऋषिर्ब्रह्मादेवता गायत्रीछन्दग्रन्थिमध्ये ब्रह्मावाहने विनियोगः) ॐ ब्रह्मयज्ञानं प्रथमं

पुरस्ताद्विसीमतः सुरुचो वेन आवः । सुबुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च विवः ॥१॥१४॥ ॐ भूर्भुवः स्वः । ब्रह्मणे नमः ब्रह्माणं ग्रन्थिमध्ये न्य० आवा० ॥ (इदं विष्णुरितिमन्त्रस्य मेधातिथिर्ऋषिः । विष्णुर्देवता गायत्रीछन्दो ग्रन्थिमध्ये विष्ण्वावाहने विनि०) ॐ इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् । समूढमस्य पाँ सुरे स्वाहा ॐ भूर्भुवः स्वः । विष्णवे नमः विष्णुं ग्रन्थिमध्ये न्य० ॥२॥१५॥ (त्र्यंबकमित्यस्य मन्त्रस्य वसिष्ठऋषिः रुद्रो देवता विराट् ब्राह्मी त्रिष्टुप्छन्दः । ग्रन्थिमध्ये रुद्रावाहने विनियोगः) ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिवबन्धनान्मृत्योर्मुक्षीयमामृतात् ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः । रुद्राय नमः । रुद्रं ग्रन्थिमध्ये न्यसामि आवाहयामि ॥३॥१६॥ ॐ भूर्भुवः स्वः प्रणा-वाद्यावाहितयज्ञोपवीतदेवताभ्यो नमो नमः । यथास्थानमहं न्यसामि आवाहयामि ॥ ऐसे ही जिनके पञ्च प्रवर हों वह गणेश व देवी का उनके मन्त्र व नाम से न्यासावाहन कर लेवें ॥ फिर गन्ध, अक्षत, पुष्पादि से व मानसोपचार से ही पूजन करके ध्यान करे—ध्यानमन्त्राः=ॐ प्रजापतेर्यत्सहजं पवित्रं कार्पाससूत्रोद्भवब्रह्मसूत्रम् । ब्रह्मत्वसिद्धयै च यशः प्रकाशं जपस्य सिद्धिं कुरु ब्रह्मसूत्रम् ॥१॥ ॐ नवप्राणान्नवभिः समिमीते दीर्घायुत्वाय शतशारदाय हरिते त्रीणि रजते त्रीणि+अयसि त्रीणि तपसा विष्ठितानि ॥२॥ अग्निः, सूर्यं, चन्द्रमाभूमिरापो द्यौरन्तरिक्षं प्रदिशो-दिशश्च । आतवा ऋतुभिः संविदानाश्नेन मा धि त्रिवृता पारयन्तु ।३॥ ॐ त्रयः सुपर्णास्त्रिवृता यदायन्नेकाक्षरं अभिसम्भूय शक्राः ॥ प्रत्यौहन्मृत्यु ममृतेनसाकमन्तर्दधाना दुरितानि विश्वा ॥४॥ ॐ पुरं देवानाममृतं हिरण्यं य आवेधे प्रथमो दिवो अग्रे । तस्मैनमोदशः प्राचीः कृणोम्यनुमन्यतां त्रिवृताबधेमे ॥५॥ इति ॥ ध्यान करके चाहे पूजन करे ॥ फिर सूर्य को दिखावे=ॐ उपयामगृहीतोसि सावित्रोसि च नोधाश्चनोधा असि नो मयि धेहि । जिन्व यज्ञ जिन्वयज्ञपतिं भगायदेवायसवित्रे ॥१॥ फिर तीन बार ताड़न करे (ठोंक देवे) ततः । हाथ सम्पुट में धरके (दोनों हाथ से ढक कर) दस बार गायत्री पढ़े तत्पश्चात्=धारण करे (पहिरे) । यज्ञोपवीत

मिति मन्त्रस्य परमेष्ठीऋषिर्लिङ्गोक्तादेवता त्रिष्टुप्छन्दः यज्ञोपवीतपरिधाने विनियोगः ।। ॐ यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात् । आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्चशुभ्रं यज्ञोपवीतं वलमस्तुतेजः ।। ॐ यज्ञोपवीतमसि यज्ञोपवीतेनोपनह्यामि ।। इस मन्त्र से जनेऊ पृथक्-पृथक् धारण करे। प्रत्येक यज्ञोपवीत धारण करने में प्रथम व पश्चात् (तो अवश्य ही) आचमन करे=ॐ केशवाय नमः स्वाहा ।।१।। ॐ नारायणाय नमः स्वाहाः । ॐ माधवाय नमः स्वाहा । इन मंत्रों को पढ़कर आचमन करे । इन्हीं से दुवारा आचमन करे (द्विराचमनम् इतिलेखः) ।। जीर्णं यज्ञोपवीत का त्यागना हो तो यह मन्त्र पढ़कर शिर से (माला सा कर बीच में हाथ लगा) निकाले ।। ॐपवित्रवन्तं यदि जीर्णवन्तं वेदान्तनित्यं परब्रह्मसूत्रम् ।। आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुक्तमेनं यज्ञोपवीतं विसृजामि शुभ्रम् ।। इस मन्त्र से उतार कर त्याग करे ।। एतावद्दिनपर्यन्तं ब्रह्म त्वं धारितं मया । जीर्णत्वात्वत्परित्यागो गच्छ सूत्र यथा सुखम् ।। शुद्ध स्थल व जल में जीर्णं (पुराना टूटा, अशुद्ध) यज्ञोपवीत को छोड़ दे फिर यथावसर ३, १०, १०८ गायत्री जप करे ।। अनेन नवयज्ञोपवीतधारणार्थं कृतेन गायत्रीजपेन श्रीसविता देवताप्रीयतां न मम ।। पढ़कर जल छोड़ दे ।। ॐ तत्सद् ब्रह्मणे नमोनमः ।। एतत्कर्म ॐ तत्सद् ब्रह्मार्पणमस्तु । ॐ अच्युताय नमः ।।

।। इति यज्ञोपवीतधारणसंस्कारविधि समाप्त ।।

यदि संक्षेप करना हो तो विनियोग छोड़ दे। यदि शीघ्रता हो तो सब देवताओं का नाम मात्र से उच्चारण कर (ॐ भूर्भुवः स्वः ओङ्काराय नमः प्रथमे सूत्रे० एव सर्वत्र) ध्यान, न्यास, आवाहन करके धारण करे। आचमन, प्राणायाम, प्रक्षालन, पश्चादाचमन तो अवश्य हो करना होगा।

यह यज्ञोपवीत का विषय = वैदिक (ब्राह्मण, आरण्यक, ब्रह्मोपनिषद्, यजुर्वेदीयाह्निक व कान्यकुब्ज भास्कर द्वितीयावृति) आदि अन्यान्य ग्रन्थों को देखकर व साधु सन्तों के–सत्संग प्राप्त उपदेश से ग्रहण कर लिखा गया है ॥ यज्ञोपवीत जहाँतक हो शुद्ध अपना या अपने कुटुम्बी व आचार्य आदि से ही बना हुआ धारण करना चाहिए। और बाजार में पहननेवालों अन्य वर्णों से शुष्क वैर, वाद-विवाद छोड़कर (प्रायः पूछने पर) शुद्ध शान्त यथार्थ सत्य सद्भाव से कल्याण की बात कहनी चाहिए। कल्याण दृष्टि से गुरु, शास्त्र, समाज, परंपरागत शिष्टाचार को ही मानना आर्यत्व है। केवल मनोमुखाचार आर्यत्व नहीं है ॥ कल्याण वह सुख व हित है जो मरण पश्चात् ही मिलता है व देखने में आता है। उसका वेदादि सच्छास्त्र ही प्रमाण हैं। वैदिक प्रमाण कहीं कभो कोई मानना और कभी कोई मानना उचित नहीं। यथाधिकार यथावसर यथाशक्ति सब मानना। तदनुसार धैर्य उत्साहपूर्वक निष्काम कर्म करना ही कल्याणप्रद है। ॐ तत्सद् ॥

ह० महादेव शर्म बनी
कर्णपुरान्तर्गत अमौर ग्राम निवासी ॥
॥ श्री० शु० २ मगल सं० २०००

यह यज्ञोपवीत विधान वेदस्मृत्यादि सम्मत होने से द्विजातियों को आदरपूर्वक ग्रहण करना चाहिए।

ह० रामचन्द्र बाजपेयी
पूस सुदी १२ सं० २००२

परिशिष्ट

अंगुलि चौका विषयक

९६ पदार्थ (कान्यकुब्ज भास्कर द्वितीयावृत्ति)

गायत्री के चौबीस २ अक्षर चारो वेदों में होने से ९६ अथवा-

तिथि १५ = प्रतिप्रदा (परिवा) से पक्षांत तक

वार ७ = सूर्यवार चन्द्रवार आदि शनिवार तक

नक्षत्र २७ = अश्विनी से रेवती तक (अभिजित् छोड़ कर)

तत्व २५ = पुरुष, प्रकृति, महान्, अहंकार, मन, श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, नासिका यह ५ ज्ञानेन्द्रिय। वाणी, हाथ, पाँव, उपस्थ, गुदा यह ५ कर्मेन्द्रिय। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध यह ५ तन्मात्रा। आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी यह ५ महाभूत।

वेद ४ = ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद

गुण ३ = सत्वगुण, रजोगुण, तमोगुण

काल ३ = भूत, वर्तमान, भविष्य

मास १२ = चैत्र, वैशाख आदि

——

९६

अथवा (दूसरी अन्य पुस्तक से)

५ महाभूत

५ तन्मात्रा

१० इन्द्रिय

४ अन्तःकरण = मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार

५ प्राण = प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान

४ अवस्था = जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय

३ देह = स्थूल शरीर १ सूक्ष्म शरीर २ कारण शरीर ३

६ भाव विकार = अस्ति (है), जायते (पैदा होता है), वर्धते (बढ़ता है), विपरिणमते (पकता है), अपक्षीयते (क्षीण होता है), बिनश्यति (नष्ट होता है)

६ उर्मि = जन्म, मरण, सुख, दुःख, क्षुधा, पिपासा

६ कोश = त्वचा, रक्त, मांस, मेद अस्थि, मज्जा

६ अरिषड् = काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर

९ विषय = बोलना, लेना, चलना, विषय सुख, छोड़ना, यह ५ कर्मेन्द्रियों के विषय हैं। पंचतन्मात्र ही ज्ञानेन्द्रियोंके विषय हैं वह यहाँ नहीं गिने गये) संशय, निश्चय, विचार (चिन्तन), अभिमान, यह अन्तःकरण के चार विषय हैं (विषय सब १४ हैं)

१४ देवता = दिशा, वायु, सूर्य, वरुण, अश्विनीकुमार (ज्ञानेन्द्रिय देवता है)। अग्नि, इन्द्र, उपेन्द्र, प्रजापति, यम (५ यह कर्मेन्द्रिय देवता हैं)। चन्द्रमा, ब्रह्मा, ·वासुदेव, रुद्र, (४ यह अन्तःकरण देवता है)।

४ व्यवहार = मैत्री, करुणा, मुदित, उपेक्षा

३ काल = भूत, वर्तमान, भविष्यत्

३ कर्म = संचित, क्रियमाण, प्रारब्ध

३ गुण = सत्य, रजः, तमः

९६

अथवा (परम्परा सत्संग प्राप्त)

२० सहस्र मन्त्र चार वेदों के निर्विवाद अपौरुषेय
८० सहस्र ब्राह्मण (आरण्यक उपनिषद्) वेद श्रुतियाँ हैं

---

१ लक्ष

४० सहस्र ऋग्वेद (मन्त्र ब्राह्मण पूर्ण)
२५ सहस्र यजुर्वेद (मन्त्र ब्राह्मण पूर्ण)
१५ सहस्र सामवेद (मन्त्र ब्राह्मण पूर्ण)
२० सहस्र आथर्वण वेद (मन्त्र ब्राह्मण पूर्ण)

इनमें ४ सहस्र ज्ञान कांड विशेष छोड़ कर ९६ सहस्र शेष।

परिशिष्ट

सूत्र (डोरा) विषयक

अवाङ्मनस गोचर कारण का कारण परमात्मा परब्रह्म परमेश्वर है जिसकी, शक्ति कहो या महिमा कहो या स्वभाव या प्रधान प्रकृति कहो वह चित् (चैतन्य) और अचित् (जड़) भेद से दो प्रकार की कही जाती है (जिसे ही गीता में परा अपरा रूप से कहा है)। इन्हीं दोनों शक्तियों का संमिश्रण जगत् का मूल है इसी से केवल चित् को सत्वगुण व अचित् को तमोगुण और चिदचित् (संमिश्रण) को रजोगुण कहते हैं। यह तीनों परस्पर सदैव समिश्रित ही अभिव्यक्त होते हैं केवल एक-एक गुण बिना दूसरे से मिले अपनी सत्ता ही नहीं रखते क्योंकि दर्शनशास्त्रों के सिद्धान्त से वह परस्पर सापेक्ष हैं अन्यथा एक तत्वात्मक ही हैं। जैसे कि ऊँचाई नीचाई और समता एक ही सोपान पंक्ति में ऊपर नीचे के विन्दु से ही कल्पित रहती हैं।। उसी प्रकार यह सत्व, रजः, तमः, तीन गुण हैं जो क्रम से ज्ञान, कर्म, द्रव्य अथवा प्रकाश, क्रिया, स्थिति कहलाते हैं। इन्हीं तीन गुणों के अन्योन्य मिश्रण से ज्ञानात्मक, कर्मात्मक, द्रव्यात्मक ये ३+३+३ ऐसे नौ भेद होते हैं। जिनका वर्णन यज्ञोपवीत में हुआ है। वही स्पष्ट समझने के लिए आगे लिखे प्रकार से पुनः प्रदर्शित हैं।

चित् = सत्व = ज्ञान = सुख मात्र है — १ (प्रकाश रूप)

चिदचित् = रज = कर्म = दुःख मात्र है — २ (क्रिया रूप)

अचित् = तम = द्रव्य = जड़मात्र है — ३ (स्थिति रूप)

गुणों के परस्पर त्रिवृत्कृत ९ पदार्थ

सत्व	रज	तम
सात्विक = आत्मा	ईश्वर	जीव = ज्ञानात्मक ३
राजस = अन्तःकरण	प्राण	इन्द्रिय = कर्मात्मक
तमस = देहपिंड	पृथिव्यादिपिंड	काष्ठलोष्ठादिखंड = द्रव्यात्मक

अथर्ववेद में कहे हुए ९ देवता

अग्नि १	सूर्य २	चन्द्रमा ३
पृथ्वी ४	अप् ५	द्यौ ६
अन्तरिक्ष ७	दिशा ८	प्रदिशा ९

अन्यत्र कहे हुए ९ तन्तु देवता

ओङ्कार १	अग्नि २	तक्षक ३
सोम ४	पितर ५	प्रजापतिः ६
वायु (यम) ७	सूर्य ८	विश्वेदेवाः ९

तीन डोरों के पदार्थ

मात्रा = अ १	उ २	३ = म् ३ प्रणव की ३ मात्रा हैं
व्याहृति = भूः १	भुवः २	स्वः ३ = लोकदेव वेद प्राणादि
अवस्था = जाग्रत् १	स्वप्न २	सुषुप्ति ३
पदार्थ = स्थूल	सूक्ष्म	कारण

तीन प्रवर = (अपने २ गोत्र के ३ प्रधान पुरुष)
अथवा = ब्रह्मा १ विष्णु २ महेश ३ यह तीन देवता सर्वश्रेष्ठ हैं
पाँच प्रवर = (अपने २ गोत्र के प्रधान ५ पुरुष) अथवा = पंचदेव श्रेष्ठ हैं
गणेश १ विष्णु २ सूर्य (ब्रह्मा) ३ शिव ४ देवी ५। की उपासना करनी चाहिए।



इस उपादेय ग्रन्थ का प्रकाशन श्री १०८ स्वामी श्री राघव आश्रमजी की प्रेरणा से तथा (जज स्वामी) श्री १०८ स्वामी श्री विपिनचन्द्रानन्द जी सरस्वती महाराज के आदेशानुसार—

श्रीमती पुष्पा देवी पत्नी स्व. श्री व्रजमोहन जी चाँदीवाले, बनारसीदास स्टेट, देहली ने—

विश्ववन्द्य वीतराग ब्रह्मस्वरूप धर्मसम्राट्
१००८ स्वामी श्री हरिहरानन्द जी सरस्वती

(स्वामी श्री करपात्री जी महाराज)

की पुण्यस्मृति में

महाशिवरात्रि, २२-२-८२

की

पुण्यतिथि

पर

धर्मार्थ वितरण हेतु करवाया

मुद्रक : आनन्द कानन प्रेस, वाराणसी